ओ३म्

अप्रतिम निरूपण।

अर्थात्

पण्डित बालादत्त दीर्गदत्ति कृत

अप्रतिमप्रतिमा नामक पुस्तक की

आर्य्यसमाजकी ओर

से समीक्षा

जिसको

स्वदेश बान्धवों के

भ्रम निवारणार्थ आर्य्य समाज

देहरादूनके एक सभासदने निर्म्माण किया

कलकत्ता

बड़ाबजार ५२ नं० राजा कटरा

आर्य्यावर्त्त यन्त्रमें

मुद्रित हुआ।

भूमिका

यह प्रत्येक भारतवासी को मन्तव्य होगा कि जिस समय से इस देश में आर्य्यसमाज का आरम्भ हुआ है तभीसे पूर्व काल के मत निश्चय, विद्या, नीति और विज्ञानादि का आर्ष ग्रन्थानुसार दिन प्रति दिन प्रचार होने लगा, किन्तु शोक इस बातका है कि, ऐसे सभ्य सामाजिक प्रचारसे वर्त्तमान आर्य्य जाति में एक विचित्र हलचल पड़ गयी, और एक अपूर्व कोलाहल मचने लगा, यहांतक कि यदि इस घटना को हम पोप लिओ दि टेन्थ और मार्टिन लूथर के १५२० ईसवीके समयके संग तुलना करें तो प्राय: एकहीसा प्रतीत होता है परंतु कोटिश: धन्यबाद है करुणानिधि परमेश्वरको कि जिस्की कृपासे आज दिन हम एक ऐसे राजाकी प्रजा हैं कि जो नित्य नये लाड़ से हमें रिझा रहा है, दिन प्रतिदिन हमारे रोम२ की रक्षाकर रहा है हमारे मान और प्रतिष्ठा के बढ़ाने की विशेष चिन्ता कर रहा है जिस का जितना सामर्थ्य हो अपने अनुभव के आशय को वे खटके प्रकाश करें जिसका जो इष्ट और श्रद्धेय है जिस बिधि चाहे उसका पालन करे, किसी की क्या शक्ति है जो विघ्न डाल सके।

हे सर्व सक्तिमान् जगत्कर्त्ता न्यायमय परमेश्वर हमारी मुक्तकण्ठसे यही प्रार्थना है कि इस प्रकार का राज्य प्रवन्ध हमारे शरीर, आत्मा, धर्म्म, और विद्याके रक्षार्थ सदा चिरस्थायी रहे॥

हम पाठकोंसे अत्यन्त नम्र होकर निवेदन करते हैं कि इस पुस्तकके लिखने से हमारा यह अभिप्राय लेश मात्र नहीं

कि हम अपनी जीत और प्रतिवादी की हार प्रसिद्ध करें अथवा उनके लेखों का खण्डन करना ही प्रयोजन रख कर स्वकीर्ति और बड़ाई प्राप्त करनेके अभिलाषी हों, किंतु हमारा मुख्य और आन्तरिक आशय पक्षपात रहित सज्जन धर्म्मात्मा जनों पर यह बात प्रकाश करने से है कि जो महाशय आर्यसमाजके प्रतिकूल अनेक प्रकारकी चेष्टाओंमें प्रवृत्त हैं नितप्रति इस के हानिकारक उपायोंके विचारमें यत्नवान् रहते हैं तथा जो विषय अद्यावधि अनेक तर्क वितर्क और यथेष्ट वाद विवाद सहित निर्णय और निश्चय होचुके पुनर्वार उनही प्रसंग और उनही विषयोंसे पूर्ण लेखोंको प्रकाश करके आर्यसमाजको बाधा पहुंचानेके इच्छुक हैं, वे अत्यंतही भूलके वशीभूत हैं वे अपनी महा हानि आपही कर रहे हैं वे अपना समय निरर्थक गवा रहे हैं अपने धन और परामर्शको वृथा नष्ट कररहे हैं उक्त प्रकारके सम्पूर्ण महात्मा पुरुषों से हमारी सविनय प्रार्थना है कि आज दिन वह समय नहीं है कि आप इस प्रकार परस्पर विद्वेष में प्रवृत्त रहें और समयकी वहु मूल्यताको किंचित्भी न पहिचान कर जो आपका स्वजाति और स्वदेशार्थ यथार्थ कर्तव्य है उससे अज्ञही बने रहें मूलके निवाचको सत्य विश्राम जानें और जो सत्य ऐश्वर्यांके साधन हैं उनका चिन्तन न करें।

यदि आप कृपाकरके प्रथम भारतवर्षकी भूत और वर्तमान अवस्थाको परस्पर तोलें पश्चात् भूगोलकी अन्य जातीयोंके अनेक व्यापार प्रयत्न उद्योग और धर्मोंकी ओर दृष्टि करें कि जो वे अपने मान गौरव और सामाजिक आत्मिक और व्यावहारिकदशा उन्नत करनेके अर्थ परम दृढ़तासे कररहे हैं तो आप को तत्क्षणही अनुभव होजावे कि आपक्या कररहे हैं और आप का कर्तव्य क्या है आप मुखसे क्या कहते हैं और क्या बोलने

में आपका कल्याण है, आपने क्या समझरक्खा है और क्या स-मझनेकी ओर आपको ध्यान लगाना चाहिये सारांश इस कथनका यही है कि जिसकामके करनेसे देशका सच्चा उपकार होवे जिस योग्य रीतिसे जाति वान्धवोंके विद्या बल पराक्रम सत्यज्ञान और परस्पर ऐक्य और प्रीतिकी उन्नति हो जिससे एक दूसरेके सुख और दुःखको सत्यभावसे पहिचानने लगें वही काम करना वही व्यवहार वर्त्तना और वही उपदेश करना अपना परम कर्त्तव्य जानें और इस प्रकारके वृथा झगड़े उठा-नेसे हानिके अतिरिक्त किसी प्रकारका लाभ न समझें आप आर्य्यसमाजको अपना विरोधि धर्म्मद्रोही और सर्वथा अपने से भिन्न अनुभव करते हो परन्तु हम कहते हैं कि आप निरे विपरी तार्थ ग्राही है जो सच्चे परम मित्रको शत्रु और सत्य धर्म्मरक्षक को धर्म्मद्रोही और अपनी सच्ची सहानभूति (हमदर्दी) प्रकाश करने वालेको अपनेसे भिन्न मानते हो भला जो नाना प्रकार की उत्तम २ विद्याओंके आकर थे जिनसे नीति विज्ञान धर्म्म और श्रेष्ट व्यवहारका स्रोत प्रवाह होकर सर्वत्र भूगोलमें फैला जिनसे द्वीप द्वीपांतर के मनुष्य सुशिक्षा सद्विद्या प्राप्त कर २ के परम विद्वान बने, अब हम और आप क्या उन्हींकी सन्तान नहीं हैं जो सौमें दशभी साक्षर नहीं दीखते विद्यामें यथार्थ गु णोंकोजड़ मूलसेही पहिचानना भूलगये विद्याकी वृद्धि करना व्य वहारसे वाहिर करबैठे अविद्याके जालमें फस और अपने सत्य और प्राचीन धर्मको खोजना छोड़कर इतर ईसाई और महम्मदि आदि धर्ममें प्रवृत्त होने लगे ऐसे कठिन समयमें आर्यसमाजने उन पूर्वकालके विद्यार्णव तथा सुसभ्य गणोंकी प्रशंसा उनके गुणानुवाद और उनके यशका डन्का मचाया उनके सिद्धान्तोंके यथार्थ खोजमें उद्यत होकर यावच्छक्य उनका प्रकाश किया

संस्कृत अध्यायनार्थ लोगोंको उत्साहित किया जहांतहां पाठशाला स्थापन करनेमें यत्नवान् हुआ तो क्या यह आपने विरोधके लक्षण समझे ?क्या आर्यसमाजनें आपको यह अनुभाव जताया? जब स्कूलों पाठशालाओं और राजगृहमें उर्दू और फारसीका (जो न राजभाषा हैं और न प्रजाकी बोली है) अटल राज्य स्थिर होरहा है जिसके हेतु मातृभाषा देवनागरीका प्रचार देशसे दिनोंदिन उठने लगा और आर्य्यसन्तान निज बोलीको अन्य बोली अनुभव करने लगे पूर्व्वोक्त उर्दू फारसीके स्थानमें देवनागरी प्रचारार्थ एज्यूकेशन कमीशनमें प्रस्ताव अर्पण करने निवेदनपत्र पहुँचाने जहां तहां साधारण जनोंकी सभा जोड़नेमें (यद्यपि कृतकार्य्य न हुआ) आर्य्यसमाजने कुछ उद्योग किया और अबभी उसके यथार्थ गुणोंके प्रकाशार्थ और पुनरुद्धारार्थ यथा शक्ति यत्नवान्‌है तो क्या इस ब्यौहारको आप अपने विरुद्ध प्रतीत करते हैं ? आर्य्य-जातिके बल वीर्य्य और आजीवनका मूल विनाशक चिरकालसे प्रचलित जो गोबध हो रहा है इसके निवारण करने इसका हानिजनक परिणाम राज्याधिकारियां तक पहुंचाने और उनकी सहायतार्थ प्रार्थना करने इत्यादि कार्यसिद्धिके अर्थ नगर२ में गोरक्षिणीसभा स्थापित करनेमें जो आर्य्यसमाज प्रयत्न करताहै सो क्या इसकोभी आप वैपरीत्यके हेतु मानते हैं ? जहां तनिकभी आर्य्यसमाजके यह कान पड़ जावे कि अमुक स्थानमें अमुक आर्य्यबन्धु (अर्थात् जो अपनेको हिन्दू कहनेमें प्रसन्न हैं) भ्रान्तिवश अपना धर्म्म त्यागकर ईसाई वा महम्मदी मत धारण करनेको है सामाजिक लोग तुरन्त अपना काम धन्दा सब छोड़ छाड़ अनेक प्रकारका व्यय और श्रम उठाकर उसे सत्योपदेश करनेमें उद्यत होजाते हैं और अपनी जातिसे बाहर नहीं जाने देते इत्यादि

इसप्रकारके वर्त्ताव होनेसे आर्य्यसमाज क्या धर्म्मविनाशक और द्रोही ठहराया जासक्ता है ? आप आर्य्यसमाजको वेदविरुद्ध और उसके उपदेशोंको सत्य सनातन मर्य्यादाओंके खण्डन करनेवाले और दानादि व्यवहारोंके हटानेवाले कहते हैं तो आर्य्यसमाज का इस प्रकार उपदेश करना कि मनुष्य मात्र ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमोंको धारण करें, सत्यविद्या और सत्यज्ञान प्राप्त करें, आत्मज्ञान और इन्द्रियोंके निरोधमें यत्नवान् होवें, श्रेष्ठ जनों ब्राह्मणों और विद्वान् महात्माओंका सत्सङ्ग धारण करें, पञ्च महायज्ञादि कर्म्मोंमें प्रवृत्त होवें, विद्वानों माता पितादिकी यथार्थ सेवामें तत्पर रहें, गर्भाधानसे आदि ले अन्त्येष्टि पर्य्यन्त सोलहों संस्कारोंको पालन करें इत्यादि ये सम्पूर्ण व्याख्यान और उपदेश कि जिनका प्रचार आर्य्यसमाजकी ओरसे होता है क्या वेदविरुद्ध है ?क्या इनसब कर्म्मोंका अनुष्ठान वेदोंसेवर्ज्जित है ? क्या आर्य्यसमाजका मांस भक्षण मद्य सेवनादि कर्म्मोंको दूषित ठहराना युक्तिपूर्व्वक तथा विद्यादि प्रमाणोंसे इन्हें पापकर्म्म और हानिकारक सिद्ध करना, बिवाहादि उत्सवोंमें वृथा और निष्फल धनके व्ययको रोकना इत्यादि व्यवहार आप उत्तम मर्य्यादाओंका प्रतिबन्ध होना समझते हैं ? आप बिचारें दान नाम है अपनी वस्तु दूसरेके उपकारार्थ दे देनेका परन्तु जब दूसरेको दान समझ कर कोई पदार्थ अथवा धन दिया और लेनेवालेने उस धनादिको अपने अज्ञानसे मद्यपान व्यभिचारादि बुरे कामोंमें व्यय किया तो दानका जो यथार्थमें अर्थ है सो जाता रहा अर्थात् उपकारके बदले उस लेनेवालेका अनुपकार हुआ इससे तात्पर्य्य क्या सिद्ध हुआ कि बुद्धि और ज्ञानके बिचार सहित दान इस रीतिसे और ऐसे पुरुषको करना चाहिये कि जो उसे लेकर अपना वा दूसरेका उपका-

ही करे हानि किसीको न पहुंचावे जैसा कि श्रेष्ठ ब्राह्मण जो पूर्ण विद्वान होकर दूसरोंके विद्या सिखानेमें ही उपयुक्त रहता हो उसको दान देनेसे कई प्रकारका फल होगा, एक तो यह कि वह पण्डित स्वाजीवनार्थ और प्रकारके उदरभर्ण भिन्न होनेसे बचेगा और अपना समग्रकाल विद्या पढ़ाने और उसे प्रकाश करनेमें ही बितावेगा। दूसरा यह कि विद्वान् होनेसे शुभ कर्म्ममें ही वह उसे व्यय करेगा, दुष्टकर्म्ममें कदापि नहीं तो ऐसे श्रेष्ठ विद्वानोंको दान देनेका निषेध आर्य्यसमाज ने किस ग्रन्थमें किया? वा इसके किस उपदेशकने अपने व्याख्यानमें यह करना वर्जित किया है? आप बतावें! दूसरा दान अनाथ तथा अङ्गहीन, दीन, बालकों और मनुष्यों के पालन और पोषणमें होना चाहिये, परन्तु सर्व्वोपरि दान तो विद्यादान है कि, जिससे अधिक दूसरा नहीं और जितनी आवश्यकता इस दानकी आजकल भारतवर्षमें है अन्यकी नहीं, तो बस समझ लीजिये कि आर्य्यसमाज उसही दानको सत्यदान मानता है कि, जिसका लेनेवाला उससे सुख प्राप्त करे तथा शुभकर्म्मों में व्यय करनेवाला और परो-पकारी जन हो तो आर्य्यसमाजकी ओरसे अनाथाश्रम नियत होना इसके सभासदोंका पाठशालादिमें धन प्रदान करना, समाचार पत्रोंको क्रय करना (कि जो नाना प्रकारके कुव्यव हारों और राजपीड़ादि दोषोंसे देशकी रक्षा कर रहे हैं) पाप दान नहीं गिनते? आप कहते हैं कि आर्य्यसमाज श्रीरामचन्द्र कृष्णचन्द्र और ब्राह्मणादि देवताओंको दुर्वाक्य बोलनेवाला, उनकी निन्दा करनेवाला और उनको दोषयुक्त ठहरानेवाला है।" हम कहते हैं कि यह आपका सर्वथा मिथ्या दोषारोपण करना है, आप आर्य्यसमाजके किसी उपदेशक

के वाक्य अथवा इसके किसी लेखका प्रमाण देवें तो आप का कथन सिद्ध होवे। परम-तेजस्वी महा विद्या-सम्पन्न विश्वाधिपति श्रीरामचन्द्र तथा कृष्णचन्द्रादिकों को चोर, व्य-भिचारी, छली आदि कहनेवालोंको तो आर्य्यसमाज मुखभञ्जन करनेमें प्रवृत्त हैं, उनके गौरव उनके प्रतापादि यथार्थ गुणोंका प्रकाश और उनके सत्याचरणोंके उदाहरण द्वारा उपदेश कर रहा है, न कि इसके प्रतिपक्ष। आप महानर्थ करके उलटा उसेही दोषी बनाते हैं, इसही भांति वेदादि सत्य शास्त्र-धुरन्धर, जितेन्द्रिय, परोपकारी, सत्योपदेशक पुरुषोंकी यावच्छक्य तन, मन, धनसे स्वत: सेवा :सुश्रुषादि करने और औरोंसे पालन करानेमें आर्य्यसमाज उद्यत है कि जिस प्रकार के पुरुषोंकी वेदादि शास्त्रोंमें ब्राह्मण संज्ञा कही है सो उक्त महात्माओंकी निन्दा करनेवालों और उनको पीड़ा देनेवालोंका परमेश्वर खोज मिटावे, आर्य्यसमाज की तो इस प्रकार की प्रार्थना है आप मिथ्या दोष लगाकर पापके भागी बनें तो यह क्या करे, हां जो आपका मनोर्थ यह होवे कि जो लोग ब्राह्मणकुल में विद्यमान होकर विद्याके नाम काला अक्षर नहीं जानें वेद शास्त्रोंका नामही सुनकर चौंक पड़ें कि, कोन पक्षीका नाम ले दिया, इन्द्रियोंके विषयोंमें बद्ध हों, येन केन विधि अपना अर्थ सिद्ध करके, दूसरेके उपकार और सुधारको जानतेही न हों, देशको नाना प्रकारकी बाधा करने के कारण हों, ऐसे लोगोंको तो आर्य्यसमाज जैसे हैं वैसाही कहेगा और उनके दोषयुक्त व्यवहारोंसे हानि सिद्ध करके उनको उनसे छुड़ानेकाही उपदेश करेगा।" निन्दा कहते हैं झूठा लाञ्छन लगानेको, जैसा कोई किसी मदिरापान करने वाले मनुष्यको मद्यप कह देवे तो यह निन्दा नहीं है और

मद्यप भी उपकार दृष्टिसे कहना अर्थात् मद्यसेवन के दोषोंको उसे सुनाकर जो कुछ उस कर्म्मसे उसकी हानि हुई वह समझाना जिस कारण वह बुरे कर्म्मसे ग्लानिमान् हो उसे त्याग कर देवे, बस समझ लीजिये आर्य्यसमाज निन्दा करना महा पाप मानता है, परन्तु परोपकारार्थ हानिकारक व्यवहारोंके दोष उजागर करके उन्हें छुड़ाना अभीष्ट रखता है अब यह आपको अत्यन्त दयादृष्टि पूर्व्वक और निष्पक्षता सहित विचारना योग्य विषय है कि आर्य्यसमाज आपका पूर्ण हितेच्छु, और परमहित-वर्द्धक होने परभी महाधूर्त, और अत्यन्त विरोधी माना जावे, सत्य सनातन वेदोक्त धर्म्म प्रचारमें और सत्य सत्याचारयुक्त व्यवहार स्थापन करने परभी वेदविरुद्ध और दुष्ट मर्यादा प्रवृत्त करानेवाला कहा जावे, यह श्रीरामचन्द्र कृष्णचन्द्रादि तेजस्वी और विद्वान् ब्राह्मणादि महात्माओंके मान और प्रतिष्ठाका बढ़ानेवाला होने परभी ब्रह्मद्रोही और देवनिन्दकही समझा जावे, इस महा-विपरीत ज्ञान फैलनेके क्या कारण हैं, सो समझमें नहीं आते, हां जान पड़ा जिन हेतुओंसे वेदविरोधी और देवनिन्दकादि विशेषणोंसे आर्य्यसमाज युक्त किया जाता है, वह हेतु यह है कि, स्वामी दयानन्द सरस्वतीके उपदेशसे भ्रमात्मक होकर (१) जड़ पदार्थों का पूजन करना छोड़ दिया (२) जल और स्थल विशेषको तीर्थ नहीं मानता (३) परमेश्वरके अवतारोंमें निश्चय नहीं करता (४) मृत माता पितादिको श्राद्धमें दिया हुआ भोजन पहुंचना नहीं मानता सत्य है निस्सन्देह यही बात है यदि आर्य्यसमाज आर्षग्रन्थोंको गठरियोंमें बांधकर आज तालेमें बन्द कर देवे संस्कृत-पाठशाला, स्कूल, अनाथाश्रम तथा अन्य देशोन्नतिके साधन आज नष्ट भ्रष्ट कर देवे, गोरक्षादि व्यवहारों

का नाम लेना बन्द करें ऋषि महर्षियोंका अक्षरभी न बोलें अपने जाति बान्धवोंको महम्मदि और क्रश्चियन होते देखकर इसके सभासद घरोंमें घुस जाया करें अग्निहोत्र, सन्ध्योपासन, षोड़स-संस्कारादि कर्म्म मनसे भूल जावे इन्द्रियोंके विषय भोग में रात्रि दिवस मस्त रहा करें विद्वान् परोपकारी जनोंको निकट न आने देवें परन्तु पूर्व्वोक्त चारो कर्म्म अङ्गीकार करें और एकबार देश भरमें इनको धर्म्मका मूल प्रसिद्ध करें तो आजही आर्य्यसामाजिक लोग पूर्ण धर्म्मात्मा यथार्थ वेद-मतावलम्वी सच्चे भगवद्भक्त कहलाने लगें, जैसे कि अठारह पुराणोक्त वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्यादि मतोंमें इतना भारी दीर्घान्तर परस्पर विरोधादि द्वेषभाव में कि एकका एक प्राणान्तक शत्रु है यद्यपि वह दीन परस्परमें एक दूसरेके कितने शत्रु और हानिजनक क्यों न होवे, तथापि कार्य्यसाधकोंका काम उन सबहीसे बना चला जाता है "बूढ़ा मरो चाहे ज्वान अपनी हत्यासे काम" कुछ प्रयोजन नहीं उनका वैरभाव सत्य ज्ञानके उपदेश द्वारा दूर करें उनके सुधारनेकी चिन्ता करें किन्तु अठारहके अठारह मत उत्तम और सत्यही हैं ऐसा कह कर और सदा भ्रमात्मक बनाके एक दूसरेसे विरोध कराते रहते हैं। अब आप कृपा सहित हमारी प्रार्थनाको स विश्वास श्रवण करें कि, आर्य्यसमाज स्वामी दयानन्द सरस्वती को न तो परमेश्वर कहता है और न परमेश्वरका अवतार मानता है, परन्तु हां जहां तक विचार किया गया वे पूर्ण विद्वान् सत्योपदेष्टा, जितेन्द्रिय और परोपकारी सत्यवक्ता पुरुष थे, सत्यासत्य और धर्म्माधर्म्मका उनको यथावत् ज्ञान था, उन्होंने अपने विद्यावल द्वारा यथार्थ रूपसे निश्चय कर लिया कि, प्राचीन समय में आर्य्यदेश में वेदादि सत्यविद्याओंका सूर्य्य

पूर्ण प्रकाशमान था नीति, धर्म्म, वल, पराक्रम, पुरुषार्थ और सुसभ्याचारादि गुणरूपी रत्नोंका आकर था अब यही आर्य्यावर्त्त है कि जो परस्पर विरोधयुक्त असंख्यात मतमन्तारों के प्रचलित होजाने और विज्ञानादि सत्य विद्याओंके नष्ट हो जाने से धूलमें मिलाजाता है यह विचारनेसे उनका रक्त उष्ण हुआ और भारत भूमिके संशोधन करनेका दृढ़प्रण स्वात्मामें धारण किया निदान उन्होंने सुनिश्चित रीतिसे जानलिया (कि जिसमें अन्यजाति और अन्य देशोंके विद्वान् भी सम्मत हैं) कि भारतकी अधोगति और अवनतिका मूल केवल इसकी धर्म्म व्यवस्थाका नष्ट होजाना है और कुछनहीं, जितने दोष इसमें उत्पन्न हुए वे सब धर्म्ममेंही व्यतिक्रम पड़जाने से हुए निदान धर्म्मका संशोधन किये विना आर्य्यावर्त्तकी सामाजिक अथवा व्यावहारिक उन्नति होना सर्वथा असम्भव है अत: तुरन्तअन्त: करणकी निष्कपट प्रेरणा सहित सत्यका उपदेश प्रचार करना आरम्भ करदिया जो मुख्य दो विद्याभावके हेतु सभ्य व्यवहार और धर्म्मके वाधक उत्पन्न होगये थे उनका शुद्धहृदय और उपकार दृष्टिसे विना किसी द्वेष और शत्रुभावके इसकारण खण्डन किया कि जिसकरके उनके यथावत् दुष्ट हानिकारक परिणाम को समझकर मनुष्य उनसे निवृत्त होवें किसी मतकी निन्दा करना लेशमात्र अभिप्रेत नहीं था परन्तु अनेक जनोंने जो प्रशंसित महात्माको वैरदृष्टिसे देखा और यावच्छक्य उनको नाना प्रकारकी शारीरक और व्यावहारिक पीड़ा पहुंचाई उनके उपदेशका तिरस्कार किया इसका आर्य्यसमाज किंचित् भी शोक और आश्चर्य्य नहीं करता क्योंकि इतिहास प्रत्यक्ष कह रहा है कि धर्म्मसंशोधक और समाज संशोधक महात्मा पुरुषोंने सदैव विपक्षियोंकी ओरसे नाना विध सन्ताप सहन किये हैं यहांतक

कि अन्तको ऐसे पुरुषोंके हाथमें उन्होंने अपने प्राणतक भी दे डाले परन्तु यदि आपको प्रशंसित स्वामीजीके सिद्धान्त पूर्वोक्त जड़ पदार्थ पूजनादि विषयक असत्य और अवैदिक प्रतीत होते हैं तो हमारा आपसे यह विनय है कि आपका और आर्य्यसमाजका परस्पर इतना विवाद और द्वेष बढ़नेका लेशमात्र भी काम नहीं है यह निपटावा तो बहुतही सुगम है जानना चाहिये कि आर्य्यसमाज स्वामीजीका मोललिया हुआ नहीं है और न उनके और इसके बीच कोई इस प्रकारका स्वीकार पत्र रजिष्टर हुआ है कि जो व्यवहार सत्य और धर्म्मयुक्त है वह स्वामीजीही कहैं तो माना जावे दूसरेका कहा सत्य सत्य नहीं समझना, ॥ आर्य्यसमाजका तो यह नियम है कि सत्य जिस समय और जहांसे प्राप्त हो तत्कालही उसको ग्रहण करलेना और असत्य जिस समय पहिचाना जावे तुरन्तही उसको त्याग करना आप यह सन्देह किंचित्मात्र भी अपने चित्तमें न लावें कि आर्य्यसमाज एक व्यवहार जो प्रथम त्याग करचुका पक्षपाती होकर पुनर्वार सत्य सिद्ध होनेपर उसे अंगीकार करनेमें लज्जास्पद होगा, किन्तु हम उच्चध्वनीके साथ आपके विश्वासार्थ प्रकाश करते हैं कि आप यथावत् दृढ़ता सहित कटिबद्ध होकर प्रतिज्ञा करें कि यावत्विधि वेदोंमें अग्निहोत्र यज्ञरचना ब्रह्मचर्य्योपदेश ईश्वरज्ञान प्रकार तथा अन्य गृहस्थ कृत्योपदेशादिका क्रमानुसार यथापूर्बक विधान किया है यथा तथ्य उसही भांति नीचे लिखे व्यवहारभी अक्षर २ सहित आप चारोंमूल संहिताओंमेंसे निकाल प्रत्यक्ष कर दिखावें और प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके द्वारा उन्हें प्राणियोंकी शारीरक आत्मिक और व्यावहारिक दशाओंके उन्नति वर्द्धक सिद्ध करदेवें तो हम प्रणकरते हैं कि आर्य्यसमाज स्वतः उन व्यवहारोंमें तन मन और आत्मा सहित

प्रवृत्त होकर व्यक्तिमात्रको तथानुकूल उपदेश करनेमें तत्कालही उद्यत होगा अर्थात्।

(१) परमेश्वर उपदेश करता है कि मनुष्य लोग श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत सत्रुघ्न, कृष्ण, बलदेव, महादेव, विष्णु, गणेश, भैरव, सीता रुक्मिणी, पार्व्वती, दुर्गा, चण्डी, काली आदि देवताओंकी मूर्त्ति पाषाणकी मृत्तिकाकी धातु अथवा काष्ठकी रचें, वस्त्र आभूषणादिसे उन्हें अलंकृत करें धूप, दीप, नैवेद्यादि पदार्थ और धन उन्हें अर्पण करें, भैंसा, बकरा और मेंढ़ा आदिका बलिदान करें, इन संपूर्ण कर्म्मोंको मुक्तिके आदि साधन मानें, इनके विरुद्ध वर्त्तनेवाले पापी होकर नर्कादिको प्राप्त होंगे।

(२) परमेश्वर सब मनुष्योंको प्रकाश करता है कि वह कश्यप दशरथ वसुदेवादिका पुत्र होकर कृत त्रेता द्वापरादि युगोंमें दुष्टोंके निवारण और स्वभक्तोंके सुखार्थ मनुष्य देह धारण करता रहे गा प्रतेयक मनुषयका धर्म्म है कि उक्त अवतारोंको साक्षात् परमेश्वर माने और उनकी नानाप्रकारकी योग्य अथवा अयोग्य क्रीड़ाओंको परमेश्वरी समझें।

(३) परमेश्वर आज्ञा करता है कि हिमालय पर्वतके शिखर पर गंगोत्तरी नामक गंगाके उत्पत्ति स्थानमें उसकी तलीमें हरिद्वार तथा काशी प्रयाग आदि स्थलोंमें गंगास्नान करना तथा गढ़वाल उड़ीसा मद्रासादि प्रदेशोंमें बद्रीनाथ जगन्नाथ रामेश्वरादि के दर्शन करना गृहस्थ लोग अपना मुख्य धर्म्म माने सद्गति और मोक्ष प्राप्तिके साधन इन्हीको समझे।

(४) परमेश्वर उपदेश करता है कि जब माता पिता पितामहादि मृतुयको प्राप्त होवें तो ग्यारह दिवस पर्य्यन्त जिस प्रकार गरूड़पुराणमें विधि कही है यावत्प्रकार मृतक के शरीर

निर्म्माणार्थ क्रिया करें एकादशेके दिवस सपिण्डी कर्म्म द्वारा मृतकको पितरोंकी श्रेणीमें प्राप्त करावे महाब्राह्मण (कञ्चा) को शय्यादि दान देवें इसमें पूर्ण विश्वास रक्खें कि जो भोज नादि खाद्य पदार्थ कञ्चाके उदरस्थ होवेगा वा जो वस्त्रादि वस्तु वह धारण करेगा वह सम्पूर्ण और तर्पणके नामसे जो जल प्रचालन किया जावेगा वह सब पूर्व्वोक्त मृत पितरोंको अमुक२ विधिसे प्राप्त होता रहेगा, इससे भिन्न जो माता पितादि जीवित हैं उनकी भोजनादिसे सेवा करनेका नाम श्राद्ध कोई मनुष्य न जाने।

५। परमेश्वर उपदेश करता है कि सत द्वापर, त्रेता कलि चारों युगोंमें मनुष्योंके भिन्न२ अर्थात् अमुक२ ग्रन्थोंका प्रतिपादित धर्म्म पालना चाहिये, एक युगका धर्म्म दूसरे युगमें उत्पन्न हुए मनुष्य कदापि सेवन न करें।

बस आपका और आर्य्यसमाजका विवाद यहीं पर समाप्त होता है यदि आप पूर्व्वोक्त पांचों व्यवहार चारों मूल संहितायोंमें से अक्षर२ सहित प्रत्यक्ष कर दिखावें परन्तु यह जगड्वाल नहीं चलेगा कि भोजन समयमें सैन्धव मांगा जावे तो उसका अर्थ घोड़ा लगाकर भोजन करनेवालेके हाथमें नमक (जो सैन्धवका यहां यथार्थ अर्थ है) के बदले घोड़ेकी लगाम पकड़ायी जावे अर्थात् प्रसङ्ग कुछ है और विषयका सम्बन्ध मूर्त्ति अथवा प्रतिमा शब्द अन्तर्गत हो जाने से कुछ औरही प्रतिपन्न करता है और आप उन शब्दोंको पकड़ मन्दिर रचना, शिव, गणेश, भैरव, दुर्गा, काली आदिकी जड़ प्रतिमाकी पूजना, धूप दीपादि अर्पण करना, सबही कुछ माया रचने लगे वा रामादि शब्द किसी स्थानमें आ जानेसे परमेश्वरको किसीका पुत्र बनाने लगें अथवा अज्ञ सहित

माना पितादिकी सेवाविधिको देख मरे पितरोंके पिण्ड भरने-
लगे इ आदि प्रलाप सर्व्वथा निरर्थक होनेसे ध्यान देने योग्य
नहीं माने जावेंगे, जिसप्रकार ऊपर बर्णन कर आये हैं अक्षर२
सहित पूर्व्वोक्त व्यवहार चारों वेदोंमें से निकाल कर प्रत्यक्ष
करने होंगे अर्थात् जड़ मूर्त्तिपूजा विषयमें नाना प्रकारके
मन्दिर बनानेकी बिधि गणेश, शिव, भैरवादिकी मूर्त्तियोंका
आकार और रूपका बर्णन किस किस पदार्थसे मूर्त्ति रचनी
चाहिये उसका वर्णन अवतारोंके विषयमें कश्यप दशरथादिसे
उत्पत्ति और कंस रावणादिके बध होनेका वर्णन श्राद्ध विषय
में [illegible] दिवस तक पिण्ड प्रदानादि क्रिया करनेका बर्णन
[illegible] पदार्थ प्राप्त होनेकी बिधि और प्रमाण इत्यादि
[illegible] चाहियें परन्तु जिस दशामें उक्त व्यवहारोंका वेदोंमें लेश
मात्र प्रमाण न मिले किन्तु उनके विरुद्ध व्यवस्था वर्त्तमान होतो
[illegible] सभी अपना कर्त्तव्य धर्म जानना होगा कि पूर्वोक्त
[illegible]ोंकी वेदविरुद्ध और पश्चात्‌की रचना बखाननेसे आर्य्य
[illegible]ोंको आप अपना विपक्षी शत्रु और देवनिन्दकादि कहना
[illegible] अन्य अश्लील वाक्य प्रदान करना उसही घड़ी त्यागदेवेंगे।

अत्यन्त शोक है उन महाशयों पर जिनकी यह सम्मति
है कि आर्य्यसामाजिक पुरुषोंका दर्शन करना और उनसे
[illegible] सम्भाषण करनाभी महापातक है, यद्यपि उनकी अ-
[illegible] अनेक वेदवाह्य मतानुयायी लोगोंको देवसमान जान
[illegible] दण्डवत् करना उनके सन्मुख खड़ा होकर नाना
[illegible] विनती करना तथा चमार चाण्डालादिका मुख देखना
और उनसे परस्पर वार्त्तालाप करना परम धर्म्महो है जो
महाशय आर्य्यसमाजके विरुद्ध भांति२ की चेष्टाओंमें प्रवृत्त हैं
और विशेष व्याघात और वैपरीत्य पूर्व्वक इसके सङ्ग वर्त्त रहे हैं

उनमें से विशेष उनहीं सज्जनोंका दल एकत्र है जिनको वेदादि सच्छास्त्रोंका कुछ ज्ञान प्राप्त है जो वास्तवमें जानते हैं कि आर्यसमाजका उपदेश सत्य और वैदिक है मनुष्य विशेष वा एक जाति विशेषको लाभ पहुँचानेके बदले सर्व साधारण की उन्नति करना इसका प्रधान अभिष्ट है परन्तु दीर्घकालकी प्रचलित मर्य्यादा व्यवहार और निश्चय (कि जो चाहें कितने हित विनाशक और अवनतिके हेतु क्यों न हों) के विरुद्ध होने और विना शारीरक अथवा मानसिक यथेष्ट परिश्रम उठाये तथा विना उद्योग और उद्यम किये जो अद्यावधि आजीवनके साधन प्राप्त हैं उनका बाधक होनेके कारण यह उन महात्माओंकी आँखोंमें कुण्क है इसही लिये यह उनका तिरस्करणीय और महानिन्दनीय विषय है केवल स्वाजीवन रक्षार्थ वे इसे संसारसे निर्मूल करनेके अर्थ यत्नवान् हैं तदुपरान्त ऐसे अवसर पर उन महान् पुरुषोंकी भी वन पड़ी कि 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः' 'धोबीका कुत्ता घरका न घाटका' अर्थात् जिन महात्माओंका कभी भी कोई धर्म नहीं हुआ जो निन्द्यकर्म करने और दुष्ट व्यवहार वर्त्तनेके हेतु सदा जाति पञ्चवालोंकी दृष्टिमें अमान्य और घृणित माने गये जिन्होंने शिवालय ठाकुरद्वारेकी ओर कभी मुखभी नहीं घुमाया वे आज दिन आर्य्यसमाजकी महाहानिकारक होनेके कारण उन जाति पञ्चोंकी पगड़ीके पुष्प बन रहे हैं आर्य्यसमाजसे विरोध कर किया मानों अपने दुष्टाचरणोंका प्रायश्चित्तही करालिया।

उक्त भद्र जनोंसे हम पुनः बारम्वार यही निवेदन करतेहैं कि आप अनुग्रह कर अपनी विचार दृष्टि को अधिक विस्तृत कर और आर्यसमाज के दीर्घाशय को यथावत् जानकर उस समुदाय को अपने शरीरवत् ही समझना प्रारम्भ करें जैसा कि

विवाद करते २ लोगोंका मन उगता गया, जिसका मिथ्यात्व सिद्ध करने में विद्वानों ने लेश भी नहीं छोड़ा, भला आर्य्यसामाजिक योग्य पुरुषोंका क्या सिर फिरा था जो वे ऐसे वृथा वाद में अपना बहुमूल्य समय नष्ट करें और अनेक उत्तम२ देशोन्नति-वर्द्धक कार्य्यों की हानि करके वृथा लेखनी रगड़ २ आपके समान नाम प्रसिद्धिके अभिलाषी बनें।

जो तत्वदर्शी और सत्यासत्य बिबेकी जन बालादत्तजी के असंगत और पिष्टपेषणवत प्रलापकी तुलनामें हमारे परिश्रम को अनावश्यक और निष्फल अनुभव करके शोक करें उन सभ्य गणोंसे हमारी फिर यही बिनयहै कि जो पूर्व कह आये हैं उसके अतिरिक्त इस ग्रन्थरचनासे हमारा और किञ्चित् मात्रभी अभिप्राय नहीं है अथवा बालादत्तजी इस अभिमानमें कदापि लिप्त न होरहें कि यह उनके उल्लेखोंकी योग्यता थी जिस हेतु हमने लेखनीको परिश्रम दिया होगा! किन्तु दृढ़ विश्वास करें कि विद्वानोंके कृपा कटाक्षसे आपके वाक्यों पर समीक्षा करना तो हमने इस पुस्तककी आदिसे लेकर अन्त पर्य्यन्त मुख्य यमही नहीं समझा कि जिसकी हमें केवल नाम मात्रको चिन्ता करनी पड़ी बस ज्ञात कर लीजिये कि जिन व्यवहारों के स्थापनार्थ आपने इतना दारुण क्लेश उठाया और जिन विपरीत संस्कारों के प्रचलनार्थ आपने इतना द्वन्द मचाया इत्यादि उन सबका मिथ्यात्व बिद्यारूपी कसौटी पर यहांतक निर्णय होचुका कि हमें अब विना यत्न किये केवल आपके नेत्रोंके ही सन्मुख कर देना पड़ा और कुछभी नहीं।

उपसंहारमें हम पण्डित बालादत्तजी तथा उनके सहवर्ती बेदार्थ प्रकाशादि पुस्तकोंके कर्त्ताओं पर पूर्ण ध्वनि और उच्च स्वरसे सम्पूर्ण आर्य्यसमाजोंकी ओरसे स्पष्ट भाषामें इस ग्रन्थके

द्वारा विदित करते हैं कि भविष्यत्‌में जो महाशय पूर्व्व लिखित पाँचो व्यवहारोंके स्थापनार्थ ग्रन्थ रचनामें प्रवृत्त हुआ चाहें तो वह यह अपना परम कर्त्तव्य जानें कि जिस प्रकार इस भूमिकाके गत पृष्ठोंमें चारों वेद संहिताओंके प्रमाण अत्यन्त दृढ़ता पूर्व्वक अपेक्षित ठहराये हैं यथा तथ्य एक २ अक्षर सहित वही बचन बेदोंमें से साक्षात् करें, अन्यथा उक्त प्रकार प्रमाण दिये बिना आप महाशय सर्व्वायु पर्य्यन्त आर्य्यसमाज के विरुद्ध प्रतिदिन असंख्यात पुस्तक निर्म्माण कीजिये इसका एक अनुचरभी प्रत्युत्तर देनेमें कदापि उद्यत न होगा और यहभी विदित हो कि इस अप्रतिम-निरूपण नामक पुस्तक का उत्तरभी यदि पूर्व्वोक्त प्रमाणोंसे शून्य प्रकाश किया गयातो वहभी तीन कालमें आर्य्योंके ध्यानाकर्षणका भागी न होगा।

हमने ग्रन्थको अधिक विस्तार देना सर्वथा अयोग्य बिचार कर पुस्तककारके समस्त लेखोंको कि जिनपर समीक्षा कियी गयी है इसमें स्थान देना व्यर्थ समझा केवल उनके पुस्तक अर्थात् 'अप्रतिम प्रतिमा' के पृष्ठ और पंक्तिका ब्यौरा दे दिया है, अतएव पाठकवर्ग जिस स्थानमें 'पु० का०' इस प्रकारके अक्षरोंके आगे, पृ० पंक्तिमें पृ० पंक्ति होवे तो वह पुस्तककारका लेख जानें और जहाँ 'स' ऐसा अक्षर होवे उसे हमारी समीक्षा समझें।

सज्जन धर्म्मात्मा पुरुष इस ग्रन्थके मूल आशयको ग्रहण करें और लेख दोषादि स्वाभाविक भूलोंको ध्यानसे बाहिर करके ग्रन्थकर्त्ताको कृतार्थ करें, यही अन्तिम प्रार्थना है॥

देहरादून
आश्विन कृ० ४ सं० १९४३.

एक आर्य्यसमाजका
सभासद।

ओ३म्

अप्रतिम निरूपण ।

हिन्दु शब्दका व्याख्यान

अर्थात्

आर्य्य क्यों हिन्दू कहलाये

पु० का०　　पृ० १　　पृ० २　　अंत पर्य्यन्त

सं०। पुस्तककारने जो कुछ अनुमति आर्य्य जातिके हिन्दू नाम पड़ जानेमें प्रकाश कियी है वा जो हेतु इस बिषय को समर्थन करनेमें प्रगट किये हैं यद्यपि वह यथार्थ हों वा अयथार्थ हम इन लेखोंपर आक्षेप करना नहीं चाहते क्योंकि ऐसे व्यर्थ विषय पर तर्क वितर्क करनेमें समय की हानिमात्र के उपरांत और किसी प्रकारका लाभ नहीं है परन्तु हां उपरोक्त दो बिषयों पर जिनसे लेखकके हास्यास्पद सिद्धांत निकलते हैं अवश्य कुछ कहे बिना नहीं रहेंगे, अर्थात् पुस्तककार कर्म्मानुष्ठान समेत मूर्त्ति पूजक जातिकी संज्ञा आर्य्य ठहराते हैं और कर्म्मानुष्ठान हीन मूर्त्ति पूजकको दस्यु कहते हैं, परन्तु यह व्यवस्था वेदादि सतशास्त्रोंसे भिन्न उनके घरकी बनायी हुई जान पड़ती है नहीं तो जड़-मूर्त्ति पूजकोंकी आर्य्य संज्ञा होती है इस लेखके खंडन करनेमें प्रबल-प्रमाण युक्ति और सतशास्त्र बिहित दोनों प्रकारके अनर्थही बिदित करते,

मनुस्मृति अ० १० श्लो० ४३ 'शनकैस्तु क्रिया लोपादिमाः क्षत्रिय जातयः। वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणा दर्शनेन च॥' जो प्रमाणार्थ लिखा है उसका अर्थ इस प्रकार होता है कि द्विज वर्णाश्रमी क्रियाओंके लोप होनेसे शूद्रत्वको प्राप्त होजाते हैं कि जिन क्रियाओंमें यज्ञोपवीत वेदारम्भादि संस्कार सन्ध्योपासन अग्निहोत्रादि यज्ञकर्म्म विद्या पठन पाठनादि व्यवहारों से अभिप्राय है, न कि किसी और कर्म्मसे, सो यथार्थही है इन कर्म्मों के न करनेवाले शूद्र तथा दस्यु अवश्यमेव कहलाते हैं, परन्तु उक्त श्लोकमें वा उससे आगे जो पुस्तककारने लिखा है, उसमें इस विषयका तो एक अक्षर भी नहीं है कि जड़ मूर्त्ति पूजक जातिका नाम आर्य्य है, वाह! आपके ढोलकी पोल तो यहां आरम्भहीमें खुलने लगी, आगे को कैसे सम्भालोगे! अब इसके आगे पंडितजीका यह लेख कि, 'महम्मदी लोगोंने भारतवासियोंको मूर्त्ति पूजक देखा और उनका हिन्दू नाम रक्खा! इससे भी विदित होता है कि आर्य्य जाति मूर्त्ति पूजक थी।' हां सो तो वास्तवमें बहुत ठीक है क्योंकि महम्मदियोंके राज्य होनेके समयमें बरन उससे भी सहस्रों वर्ष पूर्वसे वेदादि सत्य शास्त्रोक्त विद्या लुप्त होजानेके कारण निस्सन्देह यह सर्व्वोत्कृष्ट जाति अभाग्य वशतः जड़ मूर्त्ति पूजनादि अनेक पाखंडों में प्रवृत्त होगयी थी नहीं तो भला क्या यह सम्भव था कि महम्मदी आदि मत मतांतर वेदविरुद्ध इस देशमें प्रचलित वा प्रबल होजाते? परन्तु इनविरोधियोंकी साक्षी पर जो पुस्तककार महात्मा इतना विश्वास करतेहैं कि आर्य्य जातिके सनातन धर्म्मका मूल जड़ मूर्त्ति पूजा मान बैठे!! तो स्पष्ट विदित होता है कि उन्हें सत्य ग्रन्थों और इतिहासोंका यथार्थ ज्ञान नहीं है! नहीं तो विविध विद्यायुक्त पूर्णधार्मिक

आप्त महर्षियोंके वाक्यके विरुद्ध इनकी साक्षी कदापि स्वीकार न करते ! इस प्रकरणके अंतमें पुस्तककारने हिन्दु शब्दका यथार्थ अर्थ जान कर अपनेको आर्य समझा यह एक हर्षदायक स्थान दीख पड़ा अतएव हम उनकी प्रशंसा करते हैं ! नहीं तो संप्रति अनेक विद्याकी गठरी बांधे हुए अपनेको हिन्दु कहते तनिक भी नहीं लजाते !

आर्य्यधर्म्म।

पु० का० पृ० ३ पं० २ पृ० ४ पं० १ पर्यंत

स०। हमारी समझमें पुस्तककारके इस भारी परिश्रम और व्यय उठानेसे जो उनका मुख्य अभिप्राय विचारा जावे तो वह सब उन्होंने उपरोक्त प्रकरणके नीचे दर्शाया है, अर्थात् उनके पांडित्यका आदर्श, उनके युक्तिबलका परिचय, उनकी यथार्थ विज्ञताका तत्व और चतुरता आदि गुण यथा प्रकार उक्त प्रकारणके लेखोंसे प्रत्यक्ष होगये एक अनूठी और अद्भुत चाल चलकर इसी प्रकरणमें इन्होंने दिखायी है! अपने मनमें तो निश्चय कर बैठे होंगे कि जड़ मूर्त्तिपूजा विरुद्ध मतावलम्बी अथात् क्रिश्चियन, महम्मदि तथा सनातन वेद मतानुयायी इन सबके सिद्धांत खंडन कर दिग्विजयी बन गये परन्तु यह अनुमान नहीं किया होगा कि अर्थका अनर्थ करके स्वकपोल प्रणीत मनमाने वाक्योंसे कागज काला करके आर्य्यधर्म्मके नामको पूरा बट्टा लगा दिया!

आपने अपना मन्तव्य आधुनिक वेदान्तियों तथा अद्वैत-वादियोंका (जिनको अनेकजन अनीश्वरवादी कहनाभी अयोग्य नहीं समझते हैं) आश्रयस्तम्भ धारण करके उठाया है और विविध प्रस्ताव कर अन्त में पाषाणादि साकार पदार्थों की उपासना में ला छोड़ाहै। ये भ्रममतावलम्बी जो सत्य शास्त्र विहित वेदान्त मत को दूषित कर रहे हैं वास्तव में

न तो वैदिक और न यौक्तिक कोई प्रकार का भी प्रमाण अपने पक्षको सिद्ध करने में नहीं दे सकते। आप लिखतेहैं कि "ब्रह्म विद्या आत्मज्ञान को कहते हैं अतएव हमारा परम पुरुषार्थ यही है कि अविद्यारूपी आवरण को (जिसके द्वारा अपना रूप और का और मान कर जीव संसार रूपी चक्र में भ्रमण करते हैं) दूर करके ब्रह्मका आनन्द भोगें अर्थात् ब्रह्म बन जावें" इस ब्रह्म विद्याके बलसे जीव ब्रह्म की एकता प्रतिपादित होती है।

तदनंतर ईसाई महम्मदी और आर्यों की भूल निकालके वेद, बाइबिल, और कुरान तीनोंमे जीव ब्रह्म की एकता प्रतिपादित की है अब बाइबिल में जिन बचनों से पुस्तककार जीव ब्रह्म एक सिद्ध करते हैं उन से हमारा कुछ प्रयोजन नहीं हां इतना तो अवश्य कहने में हानि न होगी कि ऐसे २ खीष्ट मताचार्यों से तो हमारा सम्भाषण हो लिया है कि जिन्होने बाइबिल को मूल 'हेब्रु' भाषा में पढ़ रखा है जिन के पास अनेक प्रकार के टीका (Commentries) उपस्थित हैं और बाइबिल को यथाविधि आप समझे बैठे हैं और प्रति दिन दूसरों को उसी का उपदेश करते हैं, और कई भाषाओं में हमने स्वत: भी बाइबिल के टीकाकारों की अनुमति और लेख देख रक्खे हैं परन्तु न तो पूर्वोक्त आचार्यों में से किसी के मुख से सुना और न आपही किसी टीका में पढ़ा कि ईसाई धर्मका यह सिद्धान्त है। जाना जाता है कि उक्त टीकाकारों वा आचार्यों ने बिना बालादत्त जी के पूंछे पढ़ डाली और बिना उनकी अनुमति लिये 'हेब्रु से टीका कर डाली होगी। यह बात मुसलमानों के पक्ष में भी समझ लेनी चाहिये। इन की जाति में एक

दल है जिसे 'सूफ़ी' बोलते हैं परन्तु वह मत कुरानसे भिन्न और उसके विरुद्ध माना जाता है। इंगलैण्डीय एक ख़ीष्ट मत के माननीय भक्त और सुविज्ञ पण्डित नवीन वेदान्तियों के विषय में ऐसा लिखते हैं कि –

Of course the Vedanta theory, if pushed to its ultimate consequences, must lead to the neglect of all duties, religions, and moral, of all activity, physical or intellectual and of all self culture. If every thing be God, then you and he and I must be one. Why should any effects be made for the advancement of self or for the good of others Every thing have must be common property.

अर्थात् यदि वस्तुत: वेदान्तियों के सिद्धान्तों का आद्यन्त पर्य्यन्त परिवर्त्तन किया जावे तो परिणाम में सर्व कर्त्तव्य कर्मों मत सम्बन्धी वा लौकिक शिष्टाचार सम्बन्धी तथा शारीरक आत्मिक आदि) का उल्लङ्घन होगा। यदि प्रत्येक वस्तु ब्रह्म ही है तो हम तुम और अन्य समग्र एक ही हुवे। पुन: स्वात्म उन्नति वा परोपकार करने में परिश्रम क्यों किया जावे ? प्रत्येक वस्तु पर सर्वसाधारण का समाधिकार होना चाहिये।

जानना चाहिये कि बाइबिल के किसी भाग का भी सिद्धान्ती जीव और परमेश्वर की एकता स्थिर करता तो अन्य जातियों में समान मतवालों के विरुद्ध प्रशंसित पंडित अपनी

अनुमति इतना दृढ़ होकर प्रकाश न करते, अतएव पुस्तक-कार को ध्यान देना चाहिये कि इस प्रकार के योगग्र बाइबेल वेत्ताओंकी तुलनामें आपकी कपोल कल्पना बाइबेलके सिद्धांतों का यथार्थ ज्ञान सिखानेके वदले आपके उपहास का हेतु हो रही है। महात्मा यीशुखीष्टके बचन को रेखा गणित की परिभाषा स्वयं सिद्धि में घटाना यह ज्ञान अनेक बाइबिल धुरन्धरों को अब आप ही के द्वारा प्राप्त होगा। अन्यथा अद्यावधि वे संपूर्ण भ्रान्ति में लिप्त रहे।

आगे वैदिक प्रमाणों से अद्वैत मत प्रदिपादन करना शेष रहा भी पुस्तककार इस प्रकार आरम्भ करते हैं कि—(एक मेवाद्वितीयं) एक अद्वितीय ब्रह्म है (सर्वं खल्विदं ब्रह्मनेहना-नास्तिकिञ्चन) यह सब ब्रह्म है इससे भिन्न कुछ नहींहै"।

उल्लिखित वाक्यों पर समीक्षा करने से पहिले हम यह प्रकट करना उचित समझते हैं कि आज पर्यन्त अनेक धुर-न्धर विद्वान् विविध शास्त्र सम्पन्न सत्यविज्ञानवेत्ता जो आर्ष ग्रन्थों के तत्वार्थ ज्ञानके कोष हुवेहैं, वेद अर्थात् श्रुति स्मृति, दर्शनादि शास्त्र तथा तर्कवितर्क अनेक युक्तिओं द्वारा संपूर्ण रूप से निर्णय कर चुके हैं कि—अद्वितीय अर्थात् नहींहै समान जिसके दूसरा पदार्थ" अनुपम सर्वाधार सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान सर्वव्यापक पवित्र नित्यमुक्त सच्चिदानन्द निराकार निर्विकार, अजर, अमर सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर से, अनेक अल्पज्ञ अपवित्र अल्पसामर्थ, सान्त इच्छा द्वेष प्रयत्न शोक दुःख सुखादि युक्त होनेसे जीव अनाद्यन्त रूपसे भिन्न है। अथच परमेश्वर उपास्य जीव उपासक परमेश्वर राजा, जीव प्रजा परमेश्वर पिता जीव सन्तानवत्, परमेश्वर महान्, जीव अल्प इत्यादि विशेषणों और सम्बन्धों से नित्य शुद्ध महान् परमेश्वर और क्षुद्र अल्प

सामर्थ जीवका अनादिकाल से भिन्नत्व है। इससे विपरीत जो यह व्यवस्था अन्यथा समझता और मानता है ऐसे मनुष्य में सतरज्ञान और यथार्थ बिद्या का अभाव, और दुराग्रह, अधर्म्म प्रवृत्ति में वीत भय रहना कुसंस्कारों का प्रभाव प्रतीत करना चाहिये। हा शोक! महान्शोक!! सतर सनातन विद्यारूपी सूर्य्यके अस्त हो जानेसे (जो इनके दौर्भाग्यका मूल हेतु है) अबिद्यान्धकार में धसे हुवे भारतवासी इस अवनति को पहुंच गये कि अद्वितीय अखण्ड ब्रह्मके खण्ड बन मिथ्या-भिमानी स्वकल्याण बिनाशकस्वत: अपने को ब्रह्म कहने लगे। अब बिचार का स्थान है कि जव अनेक वार यह बिषय यथातथा निर्णय हो चुका है तो पुस्तककार का इन लेखों पर आरूढ़ होना केवल पिसे हुवे को पीसना है। तथापि हम कुछ पंक्तियां उनकी भेट करते हैं।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्मनेहनानास्तिकिञ्चन। अर्थात् यह सब ब्रह्म हे इस से भिन्न कुछ भी नहीं" पुस्तककारका यह लेख देख कर हमें एक दृष्टान्त स्मरण हो आया कि जो इस लेखपर सांगो पांग घट रहा है और इसही को तुल्य एक ही सा अद्भुत सिद्धांन्त प्रकट करता है। वह यह है कि एक महा-पुरुष जो कि वुद्धिके पीछे लट सम्भाले हुए थे ज्योतिषीके समीप गये और अपने बर्षफल का वृत्तांत जानना चाहा ज्योतिषीं जीने उत्तर दिया कि अमुक समयमें तुम्हारा देहान्त होगा कि जिस की अवधि मासवा दो माससे अधिक न थी निदान इस बीच में उस मनुष्य को किञ्चित् भी बिघ्न न हुवा। और अवधि समाप्त होनेके पश्चात् कुशल पूर्वक जीता रहा परन्तु जो दिन ज्योंतिषी जी उसके मृत्यु का बता चुके थे उसके व्यतीत होने पीछे वह अपनी गणना मृतकोंमें करने लगा।

यद्यपि लोग उसको कहते थे कि तुम तो जीते हो तथापि वह बुद्धि का शत्रु उन कहने वाले लोगों को झुंठा कह यही बोलता था कि ज्योतिषी जी का बर्षफल तीन काल में मिथ्या नहीं हो सकता। बिचारशील जन! बिचार लेवें कि जैसा असम्भव यह एक कथन है वैसाही वह बाक्य भी है जिसको पुस्तककारने वैदिक प्रमाण का नाम लेकर धर रक्खा है अर्थात् जिसका यह अर्थ है कि यह सब ब्रह्म है और इस से भिन्न कुछ नहीं है हम अब पूंछते हैं कि यह व्यवस्था किस प्रकार बन सकती है कि बिना द्वैत भावके ऐसा बाक्य बोला जावे, देखो (युष्मद्युपपदेसमानाधिकरणे स्थानि न्यपि मध्यमः) यह पाणिनि महर्षि कृत अष्टाध्यायी के प्रथमाध्यायके चतुर्थ पादका १०३ सूत्र है जिसका यह अर्थ है कि युष्मद् अर्थात् त्वं युवाम् यूयम् इन शब्दके वा इनके प्रसङ्ग हुवे बिना मध्यम पुरुष का प्रयोग कभी नहीं होता। भला (यह सब ब्रह्म ही है) इस बाक्यमें उत्तम पुरुष नामक कर्त्ता कौन है और जिसके प्रति यह बाक्य कहा गया वह मध्यम पुरुष नहीं है तो और उसकी क्या संज्ञा होनी चाहिये? अतएव बुद्धि को व्यय करना यदि पुस्तककार अधर्म न मानते हों तो पुनरपि बिचारें और स्वीकार करें कि द्वैत भाव तो उक्त वाक्य स्वतः ही स्पष्टरूप से बिदित कर रहा है। आप ऐसी क्या अनछनी चढ़ा बैठे कि जो व लात्कार देखती आंखों उलटा ज्ञान फैलाने में कमर खेंच रहे हो। हे परमात्मन्! एक साधारण मनुष्य भी इसके समझने में बिलम्ब न करेगा कि जो ऐसा कहता है कि "यह सब ब्रह्म ही है" वह अवश्यमेव उससे अलग है जिसको वह ऐसा बचन श्रवण कराता है अतएव एक कहनेवाला दूसरा सुननेवाला और तीसरा वह

जिसका वर्णन किया गया। तीन तो प्रतयक्ष ही उक्त वाक्यसे सिद्ध होते हैं यदि आप ऐसा कहें कि नहीं उसके अतिरिक्त कोई और पदार्थ न होनेसे वह ब्रह्म आप ही कहता और आपही सुनता है जगत् में जो उत्तम मध्यम या निकृष्ट कारण अथवा कार्य है वह सब ब्रह्म ही है, उससे भिन्न कोई वस्तु समझना भ्रान्ति मात्र है और कुछ नहीं तो सिद्ध हुआ कि ऐसे केवल आप ही हैं कि जो ब्रह्म से भी अधिक शक्ति-मान् होकर अवतरे हैं, क्योंकि आपने यह तो भली भांति समझ ही लिया है कि यह जो कुछ है और दीख पड़ता है सब ब्रह्म ही है तो फिर स्वेच्छित कार्योंमें प्रवृत्त हुवे उस ब्रह्म को आप अपने शासनमें लाकर मट्टी कंकर धूल राख पाषाणादि बहुत जड़ पदार्थों को उसका स्वरूप बता उसी से उसीके सम्मुख नाक रगड़वाने में क्यों कटिबद्ध हुवे हो। हमारे मुसल्मान और क्रिश्चियन बन्धुवर्गों! आप लोगों के बिश्वास से तो अज़ाज़ील फरिश्ते ने ईश्वर की आज्ञा न मान और उसके विरुद्ध सृष्टि के मनुष्यों को भ्रमाकर पापादि कर्मों में ही लिप्त किया परन्तु 'वालादत्त जी' को आप क्या कहेंगे कि जो उत्तम रीति से इस बात को जान और समझ कर कि यह सब ब्रह्म ही है, उस को स्वाधीन बना कर नाना-बिधि नाच नचाने की चेष्टा कर रहे हैं 'भोर का बिछुड़ा सायं समय घर पहुंच जावे तोवह बिछुड़ा नहीं समझा जाता, अतएव पुस्तककार किञ्चित् बिचार को अपने चित्तमें स्थान दान देवें, और आंख खोलकर अपने अनर्थ कर्त्तव्यपर पश्चा-त्ताप करें कि एकखण्ड 'कठवल्ली' उपनिषद् का उठाकर और दूसरा छान्दोग्य में लेकर दोनो को जोड़ उनका नाम वैदिक प्रमाण रख दिया, जैसा किसी की कहावत है।

कि "कहीं की ईंट कहींका रोड़ा, भानमतीने कुनवा जोड़ा," भला अन्यदेशीय विद्वान् और शिष्ट जन जोवेदोंके महत्व तथा उत्कृष्टताको स्वीकार करते हैं ऐसे वचनोंको वेदका बाक्य सुन क्या न कहैंगे कि पण्डितजी तनिक अपने कृपाकटाक्षसे आगेके लेखों पर दृष्टि करें अर्थात् जिनको आप वेद बाक्य कहते हैं उसका (सब खल्विदं ब्रह्मतज्जलानितिशान्त उपासीत) इतना भागतो छान्दोग्य तथा (नेह नानास्तिकिञ्चन) इतना भाग कठ बल्ली उपनिषद्का हैं जिन दोनों बचनोंको मिलाकर इस प्रकार अर्थ होताहै कि यह सब जगत् ब्रह्मस्थ अर्थात् ब्रह्ममें स्थित है उसी की उपासना करनी चाहिये इसमें अन्य अनेक वस्तु उपासनीय नही हैं कैसी स्पष्टता सहित इन दोनों वाक्यों में ब्रह्मको सर्वाधार उपासनीय दर्शा कर जीबको उपासक ठहराया है और अन्य बस्तुओंको जिन्हे जीव अपनी अल्पज्ञतासे ब्रह्म न समझ लेवें पूजा करनेसे वर्जित किया है जिसका अर्थ करते समय हमारे मित्रने सत्य विषयों पर पोता फेरकर सब को ब्रह्म ही बना दिया ! हा कष्टम् ! यही अनीति इन की इस लेखमें (एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म) प्रतिभात हो रहीहैं अर्थात् छन्दोग्य में ऐसा पाठ है कि: —

सदेवसौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितोयं ब्रह्म ।

अर्थ । हे श्वेतकेतो प्रियपुत्र ! जो परमात्मा अत्यन्त सूक्ष्म और जगत् तथा जीबोंका आत्माहै वही सत्य स्वरूप जानने योग्य अपना आत्मा आपही है अन्य वैसा कोई नही ॥

आगे परमेश्वर प्रणीत सद्ग्रन्थ जो कि स्वत: सूर्य्यवत् प्रकाशित होनेके कारण स्वयं प्रामाणिक हैं तथा आप्त प्रणीत दर्शन शास्त्र और उपनिषदादि अनेक आर्ष ग्रन्थोंकेद्वारा पुस्तककारके

भ्रम निवारणार्थ जीव और परमेश्वरका भिन्नत्व दर्पणवत् नेत्रों के आगे अर्पित करते हैं आशा है कि अब तो वह अपनी हठ को छोड़कर सत्य ग्रहण करनेमें दुराग्रह न करेंगे॥ अर्थात्: —

द्वा सुपर्णासयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नयन्यो अभिचाकशीति ऋग्वेद मण्डल १ सू० १६४ मं० २० अर्थ (द्वा) जो जीव और ब्रह्म दोनो (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणोंसे सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक भावसे संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रता युक्त अनादि सनातन हैं (समानम्) वैसाही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूपकार्य्य युक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलयमें छिन्न भिन्न होजाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनोंके गुण कर्म स्वभाव भी अनादि हैं इनमें से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसारमें पाप पुण्यरूप फलों को (स्वादत्ति) अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा जो ब्रह्म है वह (अनश्नन्) क्योंकि फलोंको न भोक्ता हुवा भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है जीवसे ईश्वर ईश्वरसे जीव और दोनोंसे प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनो अनादि हैं। तथा: —

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः। यजुः अ० ४० मं० ८

अर्थात् अनादि सनातन प्रजारूप जीवोंके लिये परमात्मा ने वेद द्वारा सब विद्याओंका बोध दियाहै। तथा: —

ईश्वरः कारणं पुरुषकर्म्माफल्यदर्शनात् न्या० सू १९ जीवके कर्मानुसार फल भोग करानेमें ईश्वर कारण है जीव के कर्मों की चेष्टा करते हुवे भी फल न दीखनेसे किन्तु जीव समीहा करता है कि मै पुरुषार्थसे अमुक फलको सिद्ध करूं तथापि बहुधा सृष्टिमें ऐसा देखनेमें आता है कि चेष्टा करते हुवे भी

जीव फलको नहीं प्राप्त होते इस न्याय दर्शनके स्वरूपसे यही सिद्ध हुवा कि जीवके कर्मोंका फल प्रदाता परमेश्वर इससे भिन्न हैं। तथा: –

प्राणापाननिमेषोन्मेष जीवनमनोगतीन्द्रियान्तर विकारा: सुख दु:खेच्छा द्वेष प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि। वैशेषिक अ० ३ आ० २ सूत्र ४॥ अर्थात् (प्राण) भीतरसे वायुको निकालना (अपान) बाहरसे वायुको भीतर लेना (निमेष) आंखको नीचे ढाकना (उन्मेष) आंखको ऊपर उठाना (जीवन) प्राणका धारण करना (मन:) मनन विचार अर्थात् ज्ञान (गति) यथेष्ठ गमन (इन्द्रिय) इन्द्रियोंके विषयोंका ग्रहण करना (अन्तर विकार) क्षुधा तृषा ज्वर पीड़ा आदि बिकारों का होना, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, और प्रयत्न ये सब आत्मा अर्थात् जीवके गुण और कर्म्म हैं ब्रह्मके नही इस कारण ब्रह्म जीवसे भिन्न है। तथा: –

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्।

व्यासमुनि कृत वेदां० सू० ७॥ अर्थात् अनादि सनातनी प्रकृतिरूप (गुहा) में प्रविष्ट हैं ब्रह्म व्यापक भाव तथा जीव व्याप्यभावसे इससे स्पष्ट विदित हुआ कि जीव ब्रह्म एक नहीं तथा:—

अनुपपत्तेस्तु न शारीर:। व्या० वेदा० सू० ॥८॥

अर्थात् शरीरे भव: शारीर: शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्मके गुण कर्म स्वभाव जीवमें नही घटते इससे पृथक है। तथा: –

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरोयं पृथिवीनवेद यस्य पृथिवी शरीरं यं पृथिवीमन्तरयोमयत्येषत आत्मान्तर्याम्यमृतः। वृहदारण्यक उपनि०।३।७।३॥

योप्सुतिष्ठन् नद्भ्योन्तरोय मापो न विदुर्यस्यापः शरीरं यो पोन्तरो यमयत्येषत आत्मान्तर्याम्यमृतः। वृह० ३॥७॥४ ॥

योग्नौतिष्ठन् नग्नेरन्तरोयमग्निर्नवेद यस्याग्निः शरीरं योग्निमन्तरोयमयत्येषत आत्मान्तर्याम्यमृतः वृ० ३॥७॥५ ॥

अर्थ। याज्ञवल्क कहते हैं कि हे गार्गि! जो पृथिवी जल अग्नि में स्थित होकर पृथि० जल अग्निसे निराला वा पृ० जल अग्निके भीतर है जिसे पृ० ज० अ० नही जानते जिस के पृ० जल अ० शरीर हैं जो अन्तरवर्त्ती होकर पृ० ज० अ० को नियमित करता है वही अमृत स्वरूप परमात्मा तेरा अन्तर्यामी है। ३।४।५ तथाः –

ऋतंपिबन्तौ सुकृतस्यलोके। गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे॥ छाया तपौ ब्रह्म विदो वदन्ति। पञ्चाग्नयो ये चत्रणा चिकेता॥

अर्थ। इस लोकके किये हुये सत् कर्म्मके फलभोक्ता और फल प्रदाता दो अर्थात् जीवात्मा फल भोक्ता और परमात्मा फल प्रदाता परम हृदयाकाशरूप अन्तकरण में प्रविष्ट हैं उन

दोनोंमें ब्रह्मज्ञानी लोग और पञ्चाग्नि और त्रणचिकेता गृहस्थलोग छाया और आतपकी नाईं भेद समझते हैं। कठवल्ली ॥ ३।१ ॥

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था ह्यर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तुपराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥ मनसः परम व्यक्त मव्यक्तात्पुरुषः परः। पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परागतिः॥ कठोपनि० ॥ ३।११ ॥

अर्थ। इन्द्रियोंसे इन्द्रियोंके विषय, विषयोंसे मन, मनसे बुद्धि, बुद्धिसे महान् जो जीवात्मा, जीवात्मासे प्रकृति, प्रकृतिसे पुरुष अर्थात् ब्रह्म परे है ब्रह्मसे परे कुछ नहीं वही परमगति है।

यदि मन्यसेसुवेदतिदभ्रमेवातिनूनं त्वंवेत्थ ब्रह्मणो रूपं यदस्यत्वं यदस्यदेवेष्वथनु मीमांस्य मेव ते मन्ये विदितम्॥ तवलकारोपनि० ६ ॥

अर्थ। जो तू यह जानताहै कि (मै ब्रह्मको) सुष्ठु प्रकार जानता हूं तो तू निश्चय ब्रह्मके स्वरूपको अल्पही जानता है। जो तू ब्रह्मके (स्वरूपको आत्मामें) ज्ञात (समझता है) अथवा जो उसके रूपको देवताओंमें समझता है तो मैं यह जानता हूं कि (अभितक ब्रह्म) तुझे विचारणीय ही है *।

† अर्थात् जो लोग अपने आपाजी अथवा अन्य किसी कल्पित पदार्थको ब्रह्म समझ बैठते हैं उल्लिखित उपनिषद वाक्यसे सिद्ध हुवा कि ऐसे मनुष्योंको ब्रह्मका यथार्थ ज्ञात कदापि नही और वे भ्रान्त हैं।

यह तो वेदादि सच्छास्त्रों द्वारा जीव ईश्वरका भिन्नत्व सिद्ध हुआ आगे थोड़ा युक्ति, तर्कका स्वादु देखिये कि दोही वचनों के अद्वैत वादियों को हिचकी लग जातिहै और उतर कण्ठसे तलेही रह जाता है। इनके मत और विश्वास के आश्रयस्तम्भ छः पदार्थ हैं जिनको ये अनादि मानते हैं वे ये हैं १ जीव २ ईश्वर ३ ब्रह्म ४ जीवेश्वरका विशेष भेद ५ अविद्या अज्ञान और ६ अविद्या और चेतनका योग इनमें एक ब्रह्मको अनादि अनन्त और अन्य ५ को अनादि सांत मानते हैं क्योंकि अज्ञान के रहने पर्यन्त ये पांचों रहते हैं और इनकी आदि विदित नही है इस लिये अनादि और ज्ञान उदय होनेसे नष्ट हो जाते हैं इस लिये सांत कहलाये जाते हैं परन्तु जब कि अविद्याके योग के विना जीव, और मायाके योग विना इनके मतमें ईश्वर सिद्ध नही होता तो छठा पदार्थ ये कौनसे घरसे लाये क्योंकि अविद्या और माया तो जीवेश्वरमें चरितार्थ होगई और ब्रह्म माया और विद्याके योग विना ईश्वर नही बनता पुनः ईश्वर को अविद्या और ब्रह्मसे पृथक् गिनना व्यर्थ नही है तो क्या है इसलिये ब्रह्म, और अविद्या दो ही पदार्थ अद्वैत वादियोंके मतमें सिद्ध होतेहैं छः नहीं अब रहा कार्योपाधि कारणोपाधि से जीवेश्वरका ऐक्य सिद्ध करना सो तब बन सकता है कि जब अनन्त नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सर्वव्यापक ब्रह्ममें अज्ञान होना सिद्ध करें जिसका होना इस प्रकार असम्भव है कि जिस प्रकार पूर्व, सर्वंखल्विदंब्रह्म इस वाक्यकी समीक्षामें लिख आये हैं अर्थात् जो ब्रह्मके किसी एक देशमें स्वाश्रय और स्वविषय वा अज्ञान अनादि सर्वत्र मानोगे तो उसको सर्व शुद्ध कहना छोड़ दो और जब एक देशमें अज्ञान मानते हो तो वह जहां तहां परिछिन्न होता रहेगा इससे सिद्ध हुआ कि जितने

देशमें अज्ञान पहुंचेगा उतना ब्रह्म तो अज्ञानी और जिस२ देशको वह छोड़ता जावेगा उस२ का ब्रह्म ज्ञानी बनता रहेगा तो किसी एक देश के ब्रह्मको अनादि शुद्धज्ञानयुक्त किसप्रकार कह सकेंगे और अज्ञानी ब्रह्मकी सीमासे जो बाहर भीतर ब्रह्म रहा उसके खण्ड खण्ड होगये इससे यह आया कि उसको अखण्ड कहने से मुख बन्द करो। जिस प्रकार शरीर के किसी भाग में पीड़ा व्यधि रोग उत्पन्न होने से संपूर्ण शरीर व्याकुल हो रहता है वैसेही अज्ञान सुख दुःख क्लेशों की उपलब्धि होनेसे ब्रह्म नानाप्रकार के दुखोंमें लिप्त हुवा अर्थात् ब्रह्म का जो नित्यमुक्त स्वभावत्व है वह नष्ट हो गया इत्यादि परस्पर गुणबिरोधवाले वाक्यों से बिचार शील और तत्वदर्शी पाठकगणोंको जान लेना चाहिये कि जब इन अद्वैत वादियों को युक्तिसे मुख भेट करना [illegible] जों ब्रह्मकी ऐसी धूल उड़ाते हैं। कहिये हमारा यह कहना कि ये भ्रान्त मतावलम्बी अनीश्वर वादियोंसे भी निकृष्टतर समझने चाहिये क्या अयोग्य है? वे लोग तो यही कहतेहैं कि यह संपूर्ण जगत् सदाकालसे ऐसाही स्वाभाविक चला आया है और ऐसाही रहेगा, कर्त्ता कारण इसका कोई प्रत्यक्ष नहीं है यद्यपि पाप पुण्यके बिचार का भय और उत्साह उनको नही है तथापि वे लौकिक व्यवस्थाओंमें ऐसे नियमबद्ध रहते हैं कि परस्पर वर्त्ताव हानि लाभ को बिचार कर करते है और निन्दित कर्मोंमें प्रवृत्त होना सर्वथा अकर्त्तव्य और लज्जा मानते हैं परन्तु ये साक्षात् अभिमानके अवतारतो आपही ब्रह्म बनकर अपनेको अकर्त्ता और अभोक्ता कहते और उक्त कथानुसार आचरण करते और बर्त्तते तनिक भी भय और लज्जा नही करते हैं जब किसी कर्मका परिणाम हानिकारक और बुरा हो निकलता है तो उसको

इन्द्रियोंका स्वाभाविक धर्म ठहराते हैं और कहते हैं कि इस का प्रेरक ब्रह्म नही हैं यह वाद विवाद तो हुआही पाठक-जन किञ्चित इस चरित्र पर भी ध्यान देवें कि पुस्तककार तो अविद्यादि अज्ञान रहित बन कर निष्प्रपञ्च परिशुद्ध केवल ब्रह्म होही गये हैं फिर हम उनसे पूंछते हैं कि ब्रह्मतो जड़ चेत-नादि अर्थात् सूर्य चन्द्र नक्षत्रसे आदि लेकर समस्त जगत्‌का कर्त्ता है तो आप में भी यह गुण अवश्य होना चाहिये, कृपाकर एक तो इस प्रकार का पदार्थ रच दिखाइये, ब्रह्म तो सर्वव्यापी औरसर्वज्ञ है फिर आप अपने मनका अभिप्राय जाननेको समा-चार पत्र तथ [illegible] आदि की सहायता क्यों ढूंढ़ते हैं क्या सर्वव्यापी हो [illegible] शरीर धारियों के अंतःकरण में प्रेरण नहीं कर [illegible] तो सर्वशक्तिमान् है फिर ऐसे आतुर क्यों हुये जो [illegible] इकट्ठाकर उनमें कोलाहल मचा और पुस्तकादि छपवानेका परिश्रम करही अपने मत में मिलाने की चेष्टा करते हो? सर्वशक्तिमत्वगुणसे बलात्कार सृष्टि मात्र को अपने आधीन क्या नही कर लेते, ब्रह्म तो अनन्त है आप की साढ़े तीन हाथ के शरीर में क्यों प्रतीति हो रही है, ब्रह्म तो क्षुधा पिपासा आदि इन्द्रियों के भोगोंसे पृथक् है आप षट् रस आसि स्वादु [illegible] पदार्थों को खड़े ही क्यों डकार जाते हैं, तथा काले पीले कोट कामीज आदि वस्त्रों से क्यों प्रयोजन रखते हो, इत्यादि ब्रह्मके अनेक विशेषणों में से एक के प्रभाव का परिवर्त्तन करके दिखाइये! छी २ लज्जा नहीं आती आर्य सन्तानों को उलटे मार्गमें चलाकर सर्व भूगोल विख्यात सर्वजगत् मान्यीय पूर्वजों का क्यों गौरव नष्ट किये डालते हो।

पु० पृ० ५ पंक्ति १ — पंक्ति ४ पर्य्यन्त ।

समीक्षक — पुस्तककार के इस लेखपर हमारा कुछ कथन कदापि शोभा नहीं देसकता हां समुद्रकी तुलना में आप अंजलिवत भी समझे जाते तो भी कुछ बात थी परंतु यहांतो पासंग भी पूरी नहीं पड़ती और सूर्यकी ओर धूल उड़ाकर बहुतेरे आखों से हाथ धो बैठते हैं और आकाश मे थूक २ अपना मुख सानते फिरते हैं, कोई उन्हे क्या समझावे हां यदि न्यायदर्शी सत्यासत्य विवेचक और सत्यवादी जन ऐसे पुरुषको आपापंथी स्वार्थी मानेंगे तो हरि इच्छा कुछ कहना ही नहीं कि जिसने अपने शरीर को इन्द्रियोंके अत्याचार से रक्षित करके उनके भोग और संसार की विभव को तृणवत् जान परित्याग करडाला सत्यविद्योपार्जन सत्यासत्य विवेक शिष्टाचार शमदम योगाभ्यास आदि सत्कर्मों में आयुको व्ययकिया जिसने सर्वतंत्र सिद्धान्त अर्थात् धर्म और सत्यके तत्वज्ञान को प्राप्त करके परब्रह्म प्रणीत वेदवाक्य को ही सत्यविद्या और सद्धर्मका मूल अंगीकार किया पक्षपात को छोड़ परमेश्वर से भिन्न और किसी का भय न माना जिस शूरवीर सत्यदेश भक्तने भारत सन्तानको दुष्ट व्यवहार और कल्याणहीन अनर्थक मर्यादाओं में लिप्त हुवा देख उनको आर्यदेशकी दुर्दशाका मूल कारण जान तुरंत उनको निर्मूल करनेके अर्थ और यावत् शक्य उनका खोज मिटानेके लिये सिंहवत् गर्जन करके जहांतहां भ्रमण किया जिसने अपनी जाति और मनुष्यमात्र की शारीरक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ही शरीर धारण करनेका मुख्य कर्त्तव्यजाना जिसने प्रत्यक्षरूपमें सिद्धकर दिखाया और ज्ञानीलोगोंको दृढ़ निश्चय करायाकि सद्विद्याध्ययन सत्यभाषण सत्संग यमादि योगाभ्यास पुरुषार्थ विद्या-

दाक्षिण्य परोपकार आदि शुभकर्म्म ही धर्म के और मुक्तिके साधन हैं इतर कल्पित पदार्थोंका पूजनादि नही जिस विद्या-धुरन्धरने पूर्ण धार्मिक पूर्ण विद्वान् ऋषियोंके वचन को शब्द लेकर और अन्य प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके वलसे सत्य और असत्य ग्रन्थों का भेद इस प्रकार खोल दिखाया जिस प्रकार परस्पर मिले दुग्ध और जल पृथक २ हो जाते हैं, जिस संस्कृत विद्या के परम ज्ञाता ने सूर्यवत् प्रकाश कर दिखाया कि संस्कृत जो देववाणी कहलाती थी वास्तव में देववाणी ही है इसके महत्व और इसमें विविध विद्याओं का श्रोत: होना मनुष्य मात्रपर विदितकर दिया, तथा असंख्यात ऐसे मनुष्यों को संस्कृत विद्याध्ययन में उत्साहित किया कि जो सदाहीसे जिनों और पिशाचों की भाषाका विशेषण दिया करते थे जो इसे मृतकभाषा अर्थात् (Dead language) कहते थे जिस पूर्ण दया सागर ने अनेक भारत संतानों को कि जो सनातन वेद प्रतिपादित धर्म्म से अंध हो और कल्पित छल से प्रसिद्ध किये वेदान्त नामक मत से घृणित हो अन्य वेद विरुद्ध मतवालों के आखेट बने जाते थे अपने सत्य वैदिक उपदेशकी शक्तिसे सनातन धर्ममें दृढ़ किया, और आगेको नवीन मतवालोंके द्वारवन्द कर दिये, जिस आर्य्यहितेच्छुने विविध विज्ञान विद्यादि यन्त्ररूपी गौतम, कणाद, पातञ्जल आदि ब्रह्मर्षियोंके गौरव उनके महत्व और सद्गुणोंको अनेको इस प्रकारके मनुष्यों पर प्रकाश करके यथार्थ विश्वास कराया कि सदैव उन आप्त पुरुषोंको असभ्य जङ्गली परमेश्वरके ज्ञान से रहित तत्वपूजक आदि नामोंसे पुकारा करते थे और उन्ही श्रेष्ठाचारी धर्मतत्पर महात्माके उदाहरण द्वारा देश सुधारका यत्न किया, जिस परमहितकारी दयालुने गवादि पशुओं

पर घोर अत्याचार देख उनके सतयानाशके निवारणार्थ प्रतेयक यत्न और प्रतेयक उपायमें स्वयं कटिबद्ध होकर दूसरोंको यत्नमान किया अर्थात् राजराजेश्वरी महाराणी श्रीभिक्टोरिया के चरण कमलोंतक निवेदन करनेका सङ्कल्प किया इतयादि ऐसे देशवत्सल स्वदेशोद्धारार्थ देहतयागी धर्म प्रवर्त्तक पुरुषके कौतुकों को स्वप्रणीत आपा पन्थ आदि विशेषण युक्त करके न्याय और सतयभाषणको पीठ दिखाकर भद्रशील पुरुष परमेश्वरसे क्या भयभीतन होंगे ?

पु० का०—पृ० ५ पं० २से पृ० ६ पं० १५ पर्य्यन्त।

समीचक—उक्त लेखोंमें पुस्तककार उसही मतका नाम आर्य्यमत प्रकाश करते हैं जिससे उनको जीव और ब्रह्म की एकता का पाठ प्राप्त हो। परन्तु हमारी समझ में यह किसी निकृष्ट पूर्व संस्कार का फल जानना चाहिये कि जो मनुष्य में इस प्रकार का बिपरीत ज्ञान व्याप्त हो जावे। यथा

अनित्याशुचि दुःखानात्मसु, नित्यशुचिसुखात्म ख्यातिरविद्या॥ यो०पा०२सू०३

अर्थात् यह योग सूत्र स्पष्टरूपसे प्रकट कर रहा है कि इस प्रकार के ज्ञान को अविद्यामात्र का लक्षण समझना चाहिये क्योंकि जो पदार्थ जैसा है उसको यथार्थ वैसा ही न जान कर उसके विरुद्ध समझना जैसा कि अनित्य कार्य रूप को यह मानना कि सदाकाल से ऐसा ही चला आया है और ऐसा ही रहेगा तथा योग बलसे देवों का शरीर सदा बना रहता है। इस प्रकार विश्वास रखना इतयादि यह सब अज्ञान और अविद्याके उपरान्त और किसी वस्तुके लक्षण नहीं समझे जा सकते, अतएव सिद्ध हुआ कि पण्डितजी का इसमें

कुछ अपराध नहीं कि वे अनार्य मतको आर्य्यमत और आर्य्य-धर्म्म को आपापन्थी बर्णन करें। यह तो पूर्वोक्त सूत्र प्रत्यक्ष कह रहा है कि किस गुण का फल है। पूर्वोक्त लेखों में पुस्तककार ब्रह्मके रूप को यथावत् प्रकारसे प्रतिपादन कर के उसको निरवयव निराकार शिरारहित इन्द्रियातीत आदि विशेषण वाला निश्चित करते हैं कि जो पाठकों के स्मरण रखने योग्य वात है क्योंकि इसही प्रकरणके अगले लेखों में यही बिषय असंबद्ध प्रलाप दीखने लगेगा कि जहां पुस्तक-कार ब्रह्मके प्रत्यक्ष इन्द्रिय लटका कर उसे सब सांसारिक पदार्थों का भोग करनेवाला सिद्ध करते हैं, परन्तु देखतां आखों यह अनर्थ करते इन महाशयको परमेश्वरका भय नहीं होता कि जिन शास्त्रोक्त वाक्यों को वह अपना मंतव्य सिद्ध करने को प्रमाण देतेहैं यदि उनमें कोई पद जीव ब्रह्म का अलग२ होना दर्शावे (जैसा कि सम्पूर्ण आप्त ग्रन्थों से विदित है) उस ऐसे वाक्य को तुरन्त चाट जाते हैं। जिस प्रकार "इन्द्रियेभ्यः०" आदि कठोपनिषद् के वाक्यों में आत्म शब्दके अर्थ को खड़े ही घूंट गये।

पु० का० पृ० ६ पं० १६ पृ० ८ पं० ६ पर्यन्त।

समी० — जीव ब्रह्मैक्य प्रतिपादक मतका नाम पुस्तककार जो आर्यमत वर्णनकरते हैं इस विषय में स्वानुमति हम अपनी पूर्व समीक्षा में यथावत प्रकाशकर चुके हैं, पाठकगण उसही के द्वारा सत्यासत्य को ज्ञातकर लेवें, परन्तु मन के लय (जिस से हम उनका अभिप्राय राग द्वेषका त्याग शम दमादि इन्द्रिय निग्रह द्वारा ब्रह्मोपासना में प्रवृत होना लेते हैं) करने की सामग्री पाषाणादि जड़ पदार्थों की पूजा बिदित करते है सो इसका कारण उनमें यथार्थ ज्ञानाभाव है, मनका

स्वभाव चञ्चल होता है इतना तो वह आप ही अंगीकार कर चुके हैं क्योंकि उनका यह लेख विद्यमान है कि 'भींति से लगे हुए चित्रों की सुन्दरता को देख मन कभी किसी पर और कभी किसी पर ग्रहण करता रहेगा तदनंतर जो अति मनोहर चित्र दीख पड़ेगा अंत में वह चंचल मन उसी चित्रमें आकर्षित हो जावेगा' इत्यादि वचनों से स्पष्ट भान हुवा कि मनका चंचल होना पुस्तककार भी स्वाभाविक धर्म मानते हैं परन्तु उनका यह कहना शिर भी धरें कि वह चंचल मन भिन्न२ अंगों की रचना की परीक्षा करता हुवा किसी वार एक अंग में लवलीन हो स्थिर हो जावेगा तो यह किस प्रकार निश्चय हो कि वह एकाग्र हो कर निराकार ब्रह्म में ही ध्यानावस्थित हो गया क्योंकि अन्य शेष अंगों को छोड़ किसी विशेष स्थान में उसका स्थिर हो जाना तो केवल नेत्रेन्द्रिय की तृप्ति के अर्थ है तथा उसकी वृत्ति और वासनाओं में तो लेशमात्र भी विभेद अनुभव नहीं हो सकता क्योंकि नेत्रों के सुहावनीय स्थान में तनिक ठहरकर और उस विशेष अंगके ध्यान में मग्न होकर वह मन प्रकारांतर की कल्पनाओं में बद्ध हो जावेगा अर्थात् कभी तो उस अंग की आकृति रचना आदि की प्रशंसा में लिप्त होगा कभी और कृत्रिम पदार्थों से उसकी तुलना करके इस भांति अनुभव करेगा कि अहो संसार में एक से एक अधिक चतुर चित्रकार वर्त्तमान हैं किसी पुरुष ने यह कैसी दिव्य मूर्त्ति रची है इत्यादि क्षणवत् उस मोहिनी मूर्त्ति के संस्कार चित्त में प्रवेश करके भ्रम पूर्वक अनेक इन्द्रियों के अनुकूल संकल्प विकल्प तथा नाना प्रकार के तर्क वितर्क युक्त कामनाओं को [illegible] ते रहेंगे यथा जब कोई मनुष्य किसी अपूर्व विलक्षण वस्तु को

देखता है और वह उसके मन बस जाती है यहां तक कि स्वप्न अवस्था में यद्यपि वह अनेक प्रकार के अन्य पदार्थों का भी दर्शन करता है तथापि उस विलक्षण वस्तु को वह विशेष करके देखेगा ॥ मूल तात्पर्य इस कथन से यह सिद्ध करना हैं कि साकार पदार्थों में चित्तार्पण करने से इन्द्रियों की रुचिपूर्वक साकार ही का अनुभव होता रहता है निर्विकार निराकार परमेश्वर का संस्कार इस क्रिया के द्वारा प्राप्त होना सर्वथा असम्भव हैं, भला मनस्थिति और सद्गुरुभक्ति का यही साधन होता तो श्रीमनु भगवान् अपना धर्मशास्त्र मनुस्मृति ग्रन्थ निर्माण करते समय भ्रान्त वा भयभीत हो गये थे जो गृहस्थों के कर्त्तव्य धर्मों में जड़ पदार्थों के पूजा विधान को परमेश्वर ज्ञान प्रापिका मूल साधन समझकर धर्म के दश लक्षणों में वर्णन करना छोड़ गये ? वा महर्षि पतंजलि जिन्होंने चार भागों में महा अपूर्व ग्रन्थ योगशास्त्र केवल ब्रह्म में मनस्थितिके अर्थ ही निर्माण किया है साकार वस्तुओं को चित्तकी एकाग्रता का प्रथम साधन जानने मात्रकी भी विद्या नहीं रखते थे किञ्चित् मनुस्मृति के छटे अध्याय के इस ८१ वें श्लोक पर तो कृपादृष्टि कीजिये अर्थात्:—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ १ ॥

अर्थ। अब धर्मके दश लक्षण कहते हैं धृति अर्थात् (सन्तोष) क्षमा अर्थात् (किसीसे अपकार पाकर अपकार न करना) दम (विकार करनेवाले विषयको पाकर मनमें विकार न होना) चोरी का त्याग, पवित्रता, विषयों से इन्द्रियोंका रोकना, शास्त्र आदिका तत्व ज्ञान, आत्मज्ञान, सत्य, क्रोधका हेतु रहते सन्ते भी क्रोध न करना ।

सतत्र ब्रह्मोपासनामें ध्यानावस्थित होने और मनकी स्थिर करनेकी जो प्रधान सामग्री है तथा मोक्षप्राप्तिके मुख्य साधन हैं सो देखो किस प्रकार स्पष्टता पूर्वक पूर्वोक्त मनुवाक्यमें दर्साये हैं, भला यह यथार्थ आप्तानुकूल व्यवस्था त्याग कर इसके विरुद्ध आचरण वर्त्तके भगवत्प्राप्तिकी आशामें रहना सर्वोत्तम मनुष्य देहको वृथा गंवा देनेके उपरान्त महा पापका भागी होना नहीहै तो अन्य क्या लाभ है? इस लेखपर पुस्तककार कदाचित् यह आक्षेप करें कि गृहाश्रमी जनोंके निमित्त तो प्रवृत्ति मार्ग साकार पदार्थोंका पूजनही है, दश लक्षण-वाला धर्म तो विरक्त बैराग्य सम्पन्न मनुष्योंके अर्थ है तो इसके समाधानमें मनुजी का दूसरा श्लोक आपकी भेट है। यथा—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमोदैवोवलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम्॥

. अर्थात्। जिन पञ्च महायज्ञों को गृहस्थ लोग नित्य प्रति किया करें उनके ये नाम हैं, वेदका पढ़ना वेदमन्त्रोंके द्वारा परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना उपासना करना ब्रह्मयज्ञ, ऋषि और देव जो विद्वान् आप्त पुरुष हैं उनको श्रद्धापूर्वक भोजन आदि प्रदान करके जो तृप्त करना है सो श्राद्ध और तर्पण, अग्निहो-त्रादि यज्ञ कर्म्मोंका नाम देव यज्ञ वलिबैश्वदेवादि कर्मोंको भूत यज्ञ, और अतिथि पूजनको मनुष्ययज्ञ कहते है, कहिये अवतो दूधका दूध और पानीका पानी भिन्न रूप होकर दीखने लगा, इन पांच महायज्ञोंमें जो गृहस्थका नित्य धर्म्म है आप वतावें जड़ मूर्त्ति और पाषाण पूजाका कहां विधान है, पाठकगण कृपा कर विचारों को श्रीमनु भगवन् का कहा धर्म्म अवलम्वन करके हमको ब्रह्म प्रीति की यथार्थ साम्रिग्री ग्रहण करनी योग्य है वा बालादत्तजी की लाठी पकड़के रसा-

तल को पयान करनाही धर्म्म हैं, बड़ा भारी आश्चर्य्यतो इस विषय पर है कि हमारे मित्रने उछल कूदतो मन मानी कर डाली और कोलाहल भी थोड़ा नहीं मचाया, परन्तु आर्ष ग्रन्थों में से एक को भी यथोचित प्रकार से ध्यान पूर्वक पाठ न किया होगा नही तो इस प्रकार अयोग्य प्रलाप करके वृथा लोक हंसाई न कराते॥ अहो! उल्लिखित मनु वाक्यों से कैसा स्पष्ट विदित हो रहा है कि वेदादि सत्य विद्याध्ययन से आदि लेकर प्राणायामादि द्वारा इन्द्रिय निग्रह सत्संगादि शुद्धाचरण विद्यादानादि शुभकर्म्म तथा अग्निहोत्रादि यज्ञ विधिके अतिरिक्त इतर जड़ पदार्थोंकी पूजा किसी मनुष्य विशेषमें ईश्वरत्वमानना आदि इन अमूलक व्यवहारोंमें से एक भी ब्रह्म प्रति और सत्यज्ञान पूर्वक मन लय करनेकी सामिग्री किसी कालमें नही हो सकती, प्रियबन्धुवर्गों! सत्य जानो कि जो साकार पदार्थ तथा मनुष्य विशेष और जलादि वस्तु विशेष ही मोक्षके साधन हुवा करते तो प्राचीन कालमें हमारे ऋषि महर्षि राजा महाराजा मुक्तिके अभिलाषी और ब्रह्म प्राप्तिके अनुरागी होने पर सम्पूर्ण झगड़ा टंटा त्याग कर बनों पहाड़ों और कन्दराओंमें निवास करके पञ्चाग्नि आदि ताप२ कर योगादि क्रियाओंके बलसे इन्द्रिय निरोध करनेमें अपने उस शरीर को जो विश्वमात्रको नाना प्रकार की लौकिक और पारलौकिक विद्याओं की शिक्षा करने के कोष थे तृण-वत् जान अर्पण कर देते थे उनको आज कलके स्वार्थसिन्धु पर धन हरण नामाभिमानियोंसे भी क्या अधिक ज्ञान और अधिक बुद्धि नहीं थी? कि जिनका इन्द्रियका भोग और दूसरोंके धनको येन केन प्रकारसे अपना बनाना ही धर्म है।

—र० — पृ० पं० ७ पृ८ पं० १३ पर्य्यन्त।

स० पुस्तक कारके उक्त लेखमें हम सम्मत होतेहैं यदि उन का अभिप्राय इस प्रकारसे हो अर्थात् मन जिस समय इन्द्रियोंकी वासना से रहित होकर एकाग्रता धारण कर लेता है वह साक्षात् ब्रह्मके ध्यानमें मग्न होजाता है और वही वृत्ति शून्य मनकी अवस्था सम्प्रज्ञात नाम की समाधि हुई, परन्तु सम्प्रज्ञात ज्ञान प्राप्तिका साधन यदि वे जड़ पदार्थों की उपासना को ठहरावें तो यह उनकी महाभ्रान्ति है। बालादत्त जी का जो एक विलक्षण लेख इस स्थानमें देखनेमें आया सो भी बिना हमारी समीक्षाके अछूता रहना उचित नहीं वह यह है कि: – 'न शृणोति न वध्नाति' आदि जो शिवजी का वाक्य पार्व्वतीके प्रति कहा गया, सो पण्डितजी अत्यन्त श्रद्धा भक्ति पूर्वक अपने लेखमें प्रकाश करते हैं जाना गया कि शिवजी के वाक्योंमें उनको अत्यन्त विश्वास और प्रेम है अतएव हमे दृढ़ निश्चय है कि महाशय निम्नलिखित 'पद्मपुराण के वचनमें भी अवश्यमेव विश्वास करेंगे जिनके द्वारा शिवजी और पार्वती का एक और सम्वाद वर्णन किया गया है। अर्थात्

शृणुदेवि प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम्।
येषां श्रवणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि ॥ १ ॥
प्रथमं हि मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम्।
मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः संप्रोक्तानि ततः परम् ॥२॥
कणादेनतुसंप्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत्।
गौतमेन तथान्यायं सांख्यं तु कपिलेन वै ॥३॥
द्विजन्मना जैमिनिना पूर्ववेद मयार्थतः।
निरीश्वरेणवादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम् ॥ ४ ॥

धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम् ।
दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुनाबुद्धरूपिणा ॥ ५ ॥
बौद्धशास्त्रमसत्प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम् ।
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च ॥६॥
मयैवकथितं देवि कलौब्राह्मणरूपिणा ।
अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयंल्लोकगर्हितम् ॥७॥
कर्म्मस्वरूपत्याज्यत्वमत्र च प्रतिपाद्यते ।
सर्व्वकर्मपरिध्वंसान्नैष्कर्मं तत्रचोच्यते ॥ ८ ॥
परात्मजीवयोरैक्यं मयात्रप्रतिपाद्यते ।
ब्रह्मणोस्य परंरूपंनिर्गुणं दर्शितं मया ॥९॥
सर्व्वस्य जगतोऽप्यस्य नाशनार्थंकलौयुगे ।
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम् ॥१०॥
मयैवकथितंदेवि जगतां नाशकारणात् ।

(इति साङ्ख्यप्रवचन भाष्ये विज्ञानभिक्षूद्धृत पद्मपुराणान्तर्गत पार्व्वतीमहादेव संवादः ।)

अर्थ। हे देवि ! सुनो तामस (शास्त्रों) को मै यथाक्रम कहता हूं। जिनके श्रवण मात्रसे ज्ञानीलोग भी पतित हो जाते हैं ॥ १ ॥

पहिले तो शैव पाशुपतादिक (शास्त्र) मैंनेही कहे हैं। उनसे पीछे मेरी शक्तिद्वारा आवेशित ब्रह्मणोंने और २ (शास्त्र) कहे हैं ॥ २ ॥

कणाद (ऋषि) नेबड़ा बैशेषिक शास्त्र कहा है। गौतमने उसी प्रकार न्याय कहा है, और कपिलने साङ्ख्य ॥ ३ ॥

जैमिनि ब्राह्मणने पूर्व (मिमांसानामक) बहुत बड़ा शास्त्र वेदमय अर्थसे निरीश्वरवाद द्वारा बनाया है ॥ ४ ॥

इसी प्रकार अति गर्हित चार्व्वाक् (शास्त्र) धिषणने वर्णन किया है दैत्योंको नाशके निमित्त बुद्धरूपी विष्णुने ॥ ५ ॥

असत् बौद्धशास्त्र (जिसमें) नग्न (रहनेका और नील पटादि धारण का विधान है)। मायावाद असत् शास्त्र जो गुप्त रूपसे बौद्ध मतही है ॥ ६ ॥

हे देवि ! कलियुगमें ब्राह्मण रूपसे मैनेहि कहा है। स्रुति वाक्यों का लोक गर्हित खोटा अर्थ (इस शास्त्रमें) दिखलाकर ॥ ७ ॥

कर्म स्वरूपका तत्याज्यत्व इससे प्रतिपादितं हुवा है। और सारे कर्म्मोंके परिभ्रंस से नैष्कर्म्म इसमें कहा गया है ॥ ८ ॥

परमात्मा और जीवात्मा की एकता मैने इससे प्रतिपादन की है। (और) दिखलाया है ॥ ९ ॥

कलियुगमें इस सारे जगत्के नाशके निमित्त। वेदार्थ की न्याइं महाशास्त्र मायावाद को (जो वास्तवमें) अवैदिक है ।१०।

हे देवि ! जगतके नाशके निमित्त मैनेहि कहा है।

पूर्वोक्त सम्वादका मूल आशय और सिद्धान्त यह हुवा कि पण्डितजी सरीखे ज्ञानी महाकानयुक्त और उनके सिद्धान्त सर्वथा असत्य और मनुष्य मात्रके कल्याण विनाशक हैं हम नही समझते हमारे मित्र बालादत्तजी शिवजी के बचनों को एक स्थानमें सत्य और भ्रान्ति शून्य मान चुके तो दूसरे स्थानमें उनको मिथ्या जानें इसलिये हमे अब दृढ़ आशा हुई कि यद्यपि उनको हमारा यह लेख अप्रिय जान पड़े तथापि वह शिवजी के कथनको यथावत् प्रकारसे बिचार और समझ कर अपने कपोलकल्पित सिद्धान्तों को भ्रमका भूल, अवैदिक

ग्रन्थोंको वेदानुकूल जानना, श्रुति आदिके मिथ्या अर्थों को सत्य मानना, और सीधे भोले लोगोंको मनवाना, इत्यादि जितने इस प्रकारके व्यवहार हैं उनको तुरन्त परित्याग करके और हमको पर पन्थी और आपापन्थी कहनेसे मुख रोक कर अपने आपही को उक्त विशेषण धारण करनेका पात्र माने और पश्चात्ताप करे, फिर ध्यान देकर समझें जैसा कि हम समझते हैं कि हम और वे एकही देशकी सन्तान है भूल और अविद्यासे जो परस्पर बैर बिरोध अहङ्कार स्वार्थपरता (जिनके माता पिता मत मतान्तर हैं) सबको दूर हटा कर ऐक्य भावको प्राप्त हो जावें और सत्य सनातन वेद बिहित धर्मकाही आग्रह करें, मिथ्या अर्थ सहित सत्य ग्रन्थ के द्वारा प्रतिपादित हुवे कल्याण बाधक मतों का कदापि न करें। हम स्वीकार करते हैं कि प्रथम बहिर्योगके द्वारा ऐसी योग्यता प्राप्त करनी चाहिये कि जिस करके अन्तर्योग क्रिया सुलभ हो जाय परन्तु बहिर्योग वेदादि सत्य शास्त्राध्ययन, आप्तों और धर्मात्मा लोगोंका सत्संग इन्द्रियोंके निग्रह करने में परिश्रम आदि व्यवहारों का नाम है जड़ पाषाणादि बस्तुओं को पूजनका कदापि नहीं क्योंकि उक्त क्रियाओंके ही अभ्यास से जितेन्द्रियतादि गुणों को प्राप्त कर और परम योगी होकर मनुष्य ब्रह्मज्ञान पाता है नकि किसी और विधिसे, अतःसिद्ध हुवा कि यह पूर्वकही हुई व्यवस्था पालना ही मनुष्य देह धारियोंका कर्त्तव्य धर्म है ईश्वर प्रणीत वेद संहिताओंमें इस प्रकारके असङ्गत और युक्तिहीन बाक्यों अथवा साकार जड़ पदार्थोंकी पूजा बिधानका लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीहैं यद्यपि

महीधर सरीखे कई एक स्वार्थ वश धर्मद्रोही जनोंने इन्द्रियोंके भोगार्थ इस प्रकारकी महानर्थक और कुत्सित टीका कर डाली हैं कि जिस प्रकारके लेख प्रकाश करनेवाला आज दिन न्यायपरायण गवर्नमेण्टके नीति शासन द्वारा दण्डनीय ठहरता है, इसही प्रकार मुनिवृन्द मुकुर श्रीमनु भगवान्के धर्मशास्त्र मनुस्मृति तथा श्रीमहर्षि व्यासदेव कृत महाभारतादि ग्रन्थों के सत्य लेखोंमें जड़ पाषाणादि पदार्थोंका चिह्न मात्र नहीं है।

पु० का० पृ ८ (पं० १४ से पृ० १० पं० ४ पर्यन्त।

हाय! २ हठका त्याग तो न करोगे? उल्लिखित मनु वाक्यों में इन्द्रियोंके निग्रह करने मात्रसे अभिप्राय है (न कि किसी और कर्मसे) जिसके साधन विद्याध्ययन सत्संगादि व्यवहार हम विस्तार सहित ऊपर वर्णन कर चुके हैं और जिस अवस्था में मनु भगवान् यथोक्त कर्मों (जो यज्ञ अग्नि-होत्रादि संसारको सुख पहुंचानेके हेतु हैं) सेभी उत्तमतर इन्द्रियोंके निग्रह द्वारा शुद्धात्मा होनेकी प्रेरणा स्पष्ट और नि-र्भ्रान्त शब्दोंमें दर्शा रहे हैं तो जड़ पदार्थों का पूजा विधान पुस्तक कारका अन्तक्षेप न हुवा इसलिये बालादत्त स्मृति नाम से प्रसिद्ध होना योग्य में जिस करके मनु भगवान् का नाम कलंकसे बचे।

पु० का० पृ० १० पं० ५ – पृ० ११ पं० ६ पर्यन्त।

स० जोकि परमात्मा सम्पूर्ण जड़ और चेतन तथा चराचर पदार्थों में सर्वव्यापी होनेसे परिपूर्ण है और उनका अन्त-र्यामी होकर उनको नियमित करता है इस हेतु उस निरव-द्य निराकार इन्द्रियातीत ब्रह्मका प्रतेयक पदार्थ शरीर कहा है वस्तुतः परमेश्वरका कोई शरीर नहीं है यही व्यवस्था पूर्वोक्त

उपनिषद् वाक्यों द्वारा सिद्ध की गई अर्थात् 'यः पृथिव्यांतिष्ठन्' आदि वाक्यों में जो यह वर्णन है कि जो परमात्मा पृथिव्यादिमें स्थित हो कर और उनसे निराला है इसका शुद्ध अर्थ यही हुवा कि व्यापक रूप होनेसे प्रतेक जड़ और चेतन (जीव) पदार्थों का परमेश्वर सर्वविधि साक्षी रूप है अतः उस से कोई भी वस्तु शून्य नहीं हो सकती। इस कारण वह उसके शरीर कर माने जाते हैं इसही प्रकार निरवयव निराकार चेतन स्वरूपादि गुणयुक्त नही है इस हेतु उनको उससे भिन्न रूप से वर्णन किया गया अब सत्पुरुषों को विचारना उचित है कि उक्त पदार्थों को उस परम देवता का अंग वा देह समझ कर साढे तीन हाथ के शरीर के तुल्य कल्पना करके उसको सदेह मानना पुस्तककार का यह भ्रम नहीं है तो और क्या है।

पुस्तककार— पृष्ठ ११ पं० ७—पृष्ठ १२ पं० ८ पर्यन्त।

स० भला जब कि सम्पूर्ण विश्व अर्थात् अणुमात्र उस सर्व व्यापी की व्यापकतासे भरपूर है तो क्या वह तुच्छ पदार्थ कि जिनका आप पृथिवी जल अग्नि आदिके द्वारा समर्पित होना वर्णन करते हैं जगत् की सीमासे बाह्य है? क्या आपके समर्पण करने के पूर्व वह पदार्थ सर्वगत परमात्मा को प्राप्त नहीं थे? क्या आप उक्त पदार्थ समर्पण न करें तो परमेश्वर क्षुधातुर हो व्याकुल बन जावेगा? हम आपसे पूछते हैं कि आप उन पदार्थों को कहां से लाये जो अपनी ओर से भेट किये बताते हो। सृष्टिमें उनका आदि मूल कारण परमेश्वर को छोड़ कभी और कोई हो सकता है जिस दशामें प्रत्येक वस्तु संसारमें उसहीके अनन्तबलसे उत्पन्न हुई है और समस्त [illegible]ल पदार्थों की रचनादि सामग्री का वही कोश है तो यह

व्यवस्था बन सकती है कि उस सर्वशक्तिमान् को बिना दूसरे के दिये वह पदार्थ अप्राप्त हों जीव जो स्थूल इन्द्रियोंके द्वारा भक्ष्य द्रव्यों को आकांक्षा करताहै सो केवल शरीर पुष्टि और उसही की रक्षाके निमित्त है क्योंकि बिना भक्ष्य प्राप्त किये शरीरका स्थिर रहना दुर्घट है परन्तु निराकार सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्मको उक्त खाद्यादि पदार्थों से क्या प्रयोजन है यह क्यों नहीं कहते कि आसनमें स्थित कोई हुई जड़ मूर्त्तियों का नाम लेकर अपना ही अर्थ सिद्ध करना अभीष्ट है और कुछ नहीं, हा हा ! हे श्रीरामचन्द्र कृष्णचन्द्रादि परम तेजस्वी पूर्ण प्रतापी विश्वाधिपतियों ! क्या आप ऐसे नहीं थे जो अन्य असंख्यात प्राणियों की पेट पालना अपने नेत्रही मात्रके झप करने से कर दिया करते थे, न कि आज दिन आपका इतना मान रह जावे कि आपही का पेट दिखा कर लोग धनसे घर भरें ॥

पु० का० (पृष्ठ १२ पं ८ पृष्ठा १४ पं १ पर्यन्त ।

स० उपरोक्त लेख द्वारा पुस्तक कारने मनुस्मृतिके अध्या० १ श्लो० ८ से २२ श्लोक पर्यन्तका आशय परमात्मा को सेन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियोंवाला सिद्ध करने में लिया है कि जिस लेख से उनकी बुद्धि का विपर्यास और वृथा पाण्डित्याभिमान तो अवश्यमेव सिद्ध है परन्तु भोजन करने, सुगन्धित पदार्थों के सूंघने, उष्णाता शीतलादि सुख दुःख भोगनके अवयवती परमेश्वरमें किञ्चित् मात्र नहीं बनते भला पक्षरहित होकर तनिक उस प्रथमही अध्यायके छठे श्लोकका अर्थ तो विचारिये क्या कह रहा है ।

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तोव्यं जयन्निदम् ।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः । मनु १६

अर्थात् जो परमात्मा इन्द्रियोंसे परे सूक्ष्म अप्रकट नित्य अचिन्त्य और सब भूतोंका आत्मा (अर्थात् नियन्ता) सृष्टि का प्रकाशक हुवा ! फिर देखिये उसही अध्यायके श्लो० १७ वें पुस्तककार परमेश्वर को शरीर और इन्द्रियोंवाला बनाकर खड़ा करते हैं । यथा

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मा स्तस्ये मान्याश्रयन्तिषट् ।
तस्माच्छरीर मित्याहु स्तस्यमूर्त्तिं मनीषिणः ॥

अर्थात् प्रकृति सहित जिसके शरीर का सूक्ष्म अवयव ये सब कथित और वक्ष्यमाण अर्थात् (जो कहे जावेंगे) और इन्द्रियां इनके उत्पन्न करनेवाले [illegible] कारण पण्डित लोग ब्रह्मके स्वभाव को शरीर कहते हैं अर्थात् मनुष्यों के शरीर मन इन्द्रिय आदि और सृष्टि रचनेका सामर्थ्य परमात्मामें होनेसे उक्त सब पदार्थों को उस निराकार निरवयव ब्रह्म का शरीर कहा है क्योंकि वह उनमें व्याप्त होकर उनको नियमित करता है ।

वास्तवमें वह [illegible] शरीर और इन्द्रियों से सर्वथा अतीत है जब स्वयम् मनुजीका यह वाक्य विद्यमान है कि पण्डित लोग ब्रह्मके स्वभाव अर्थात् (उसका रचनादि सामर्थ्यका होना) को शरीर कहते हैं तो भला पण्डितोंके विरुद्ध सत्यार्थके बदले इस प्रकारसे एक कल्पित [illegible] कि जिस से परमेश्वरका इन्द्रिय सहित होकर मनुष्योंके [illegible] किये हुवे भोजनादि पदार्थ बिना पाये आतुर हो जाना प्रकट होताहै क्या उस सर्वशक्तिमान् की

ईश्वरता और सर्वशक्ति मत्वादि गुणों को भेट करने के अर्थ बालादत्त जी का स्वार्थ युक्त कथन स्वीकार करना शिष्टों का धर्म्म है ?

पु॰ का॰ पृष्ट १४ पं ३ पृष्ठ १६ पं १८ पर्य्यन्त।

स॰ उक्त लेखमें पुस्तककार न्याय शास्त्र द्वारा परमेश्वर को सेंद्रिय सिद्ध करते हैं परन्तु हमारी समझमें उनके लिये यह एक अत्यन्त ही उपयोगी विषय होता जो वह अपनी पुस्तक पर यह भी एक नियम छपवा देते कि जो कोई न्याय और तर्क का ज्ञान रखता हो वेही इस पुस्तक को देखे और पढ़े अन्य नहीं क्योंकि ऐसा होनेसे उनको दो प्रकार के लाभ होते एकतो नैयायिकों और तार्किकों में उनका उपहास होनेसे बचता और दूसरे भोले भाले लोगोंमें उनका पण्डित्य प्रसिद्ध होता, यद्यपि जो बाक्य पण्डितजीने अपना पक्ष सिद्ध करने के अर्थ न्याय के नामसे प्रकाशित किये हैं वह तर्क संग्रह नामक ग्रन्थके हैं कि जो अनार्ष हैं तथापि उनका मनोरथ उनसे भी सिद्ध नहीं होता ॥ गन्धव ती पृथ्वी साद्विधा॰ इस बाक्य का अर्थ इस प्रकारसे होता है कि न्याय शास्त्रमें वर्णन हुवे नव द्रव्योंमें से पृथ्वी जो द्रव्य है सो गन्धवती है अर्थात् गन्धयुक्त होना उसका स्वाभाविक गुण है वह परमाणु रूपमें नित्यवर्ती रहती है और परमात्माके अनन्त बलसे कार्य्यरूप बन स्थूलता को प्राप्त होकर तीन प्रकारके पदार्थोंमें संयुक्त रहती है अर्थात् शरीरोंमें मृत्तिकादि पाषाणोंमें और घ्राणेन्द्रिय द्वारा इसकी ज्ञान सिद्धि होती है जैसा कि ऊपर वर्णन हो चुका है कि गन्ध पृथ्वीका स्वाभाविक गुण है इसही प्रकार जल के विषयमें व्याख्यान समझ लेना, वह भी परमाणु रूपमें

सदैव (नित्य) बना रहता है और उसही सब शक्तिमान् के शक्तिवल से स्थूल शरीरादिमें प्रविष्ट होता है रस इसका स्वाभाविक गुण है इसके ज्ञान प्राप्तार्थ जिह्वाइन्द्रिय परमेश्वरने रची है, तदुपरान्त अग्निका भी पूर्वोक्त प्रकार से संयोग जानना चाहिये उष्णता और तेज आदि उसके स्वाभाविक गुण हैं जिन का ज्ञाननेत्र इन्द्रिय द्वारा सिद्ध होताहै उपरोक्त ही रीतिसे वायुके विषयको भी समझ लीजिये अर्थात् त्वगिन्द्रियद्वारा वायु जाना जाताहै पुनः आकाशका स्वाभाविक गुण शब्द होनेसे कर्णेन्द्रिय परमात्माने इसका ज्ञान प्राप्त करनेको रची हैं, संक्षेप से तात्पर्य इन वाक्योंका यह होताहै कि उल्लिखित पदार्थ जो न्याय शास्त्र मे प्रसिद्ध किये गये हैं परमाणु रूपसे अनादि हैं परमात्माने उन सबको अपने अनन्त वलसे एकत्र कर स्थूल रूप में सृजन कर दिया, इससे तो उस सर्वशक्तिमान् की अनन्त शक्तिका प्रभाव मात्र ही विदित होताहै कि विना हस्त पदादि अवयवों के और विना काष्ठ लोष्ठादि सामग्रीओं के और विना यन्त्रादि साधनोंके उसने शरीर इन्द्रिय और समग्र सृष्टिको निर्माण किया, उपरोक्त वाक्योंमें एक अक्षर भी नही कि जिसका यह अभिप्राय होवे कि परमेश्वर के नासिका (सूक्ष्म वा स्थूल) सूंघने को है, जिह्वा रसादिक भोगने को श्रोत्र श्रवण करने को, चक्षु देखने को, त्वक् स्पर्श करने को पुस्तककार यदि अपनी इस कपोल कल्पना की सहायतासे अज्ञ पुरुषों को वहका कर उन लेखों द्वारा ईश्वरके नाक कान जीभ आदि इन्द्रियां लटका देवें अथवा शब्दों का उलट भेद करके अपना इष्ट साधक अर्थ सिद्ध कर लेवें तो कौन पूंछता है, देखिये! स्वतः प्रमाण ईश्वर प्रणीत इस वेद वाक्य पर ध्यान दीजिये।

अर्थात्। सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमब्रण मस्नाविरकं शुद्ध मपापविद्धम् कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु०अ०४०मं०८ ॥

अर्थ। वह सर्वज्ञ परमेश्वर शरीर रहितहै उसमें छिद्रादि घाव नहीं है वह नाड़ी आदिके बन्धनसे रहित है उसे दुःख अज्ञानादि कभी नहीं व्यापते। तथा:—

सही वाग्नेतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमन एव ह्रस्वमदीर्घ मलोहित मस्नेह मच्छाय मतमोऽवायुनाकाशमसंगमरसमगन्ध मचक्षुष्क मश्रोत्र मवागमनोऽतेजस्कमप्राण ममुख ममात्र मनन्तर मबाह्यं न तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति कश्चन ॥ वृहदारण्यके ॥ ३।८।८ ॥

अर्थ। उस (याज्ञवल्क्यने) कहा कि हे गार्गि! यहवही अविनाशी (पुरुष) है जिसे ब्राह्मण लोग वर्णन करतेहै। यह स्थूल नहीं है. अणु नहीहै, ह्रस्व नही, दीर्घ नही, लाल नही, चिकना नही, छाया नही, अन्धकार नही, वह वायु नही, आकाश नही, उसमें चिपकना नही, स्वादु नही, गन्ध नही, उसके आंख नही, कान नही, बाणी नही, मन नही, तेज नही, प्राण नही, मुख नही, माप नही, भीतर नही, बाहर नही, न वह कुछ खाता है, न उसे कोई खाता है।

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्

सर्वस्य प्रभुमाशीनं सर्वस्य शरणं वृहत् ॥

(श्वेताश्वतरोपनिषदि ३।१७)

अर्थ। सर्व इन्द्रियों के गुणों का प्रकाशक है (अथच) सर्व इन्द्रियों से बिवर्जितहै सर्वका प्रभु और ईशान है सर्वका शरण

ओर महान् है। तात्पर्य्य यह है कि इन्द्रियोंके गुण देखना सुनना प्रभृति उसी की दी हुई शक्ति से प्रकाशित होतेहैं पर आप वह सब इन्द्रियों से बिवर्जित है क्योंकि किसी की उसे आवश्यकता नही।

अपाणि पादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्णः।
सवेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥ तया ३ । १९ ॥

अर्थ। उसके हस्त ओर पाद नही अथच वह गमन करता ओर ग्रहण करता है, आंख नहि अथच देखता है, कान नहि अथच सुनता है, जानने योग्य जो कुछ है वह सब जानता है, पर उसका जाननेवाला कोई नही। उस पुरुष को सबसे पूर्व ओर महान् कहते है।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथा रसं नित्यमगन्धवञ्चयत्
अनाद्यनन्तं महतः परंध्रुवं
निचाय्यतं मृत्यु मुखात् प्रमुच्यते ॥ कठ३।१५

अर्थ। उसमें शब्द नही, स्पर्श नही, रूप नही, रस नही, गन्ध नही, वह नित्य ओर अव्यय है अनादि ओर अनन्त है जीवात्मासे श्रेष्ठ ओर अटल है, उसकी आराधना करके मनुष्य मृत्युके मुखसे छुटता है।

अब पाठक गण कृपा करके अपने २ चित्तों में न्याय करें कि ऊपर लिखे वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रमाण कि जिन से वह निराकार ज्योतिर्मय परमेश्वर इन्द्रियोंसे अतीत सिद्ध है ! शिष्ट और विद्वान् पुरुषों को ग्रहण करने योग्य है वा बाला-दत्त जी के कल्पित गपोड़ों में श्रद्धा करनी बुद्धिमत्ता है ? जिन के द्वारा उस सर्वशक्तिमान् आकार रहित अनन्त ईश्वर को सदेह और इन्द्रियोंवाला बनाया है ।

पु० का० (१६ पं १९ – १८ पं २ पर्य्यन्त ॥

स० हमे यहां यही कहते बनती हैकि वेदोंके सत्यार्थ समझनेका पूर्णज्ञान पुस्तककार सरीखे महापुरुषों को प्राप्त होता तो यह आर्य्यदेश रसातल को क्यों पहुंच जाता ? हाय ! हाय ! इसही प्रकार शुद्धार्थके स्थानमें मिथ्या धक-ल्पाण रूप अर्थ रच रच करके होती ईश्वर वाणीका अतिशय निपट तिरस्कार कराय वेदोंके महत्व को नष्ट किया यथार्थ वेद विद्वान् सत्य धर्मावलम्बी ऋषि महर्षियों को 'खलकत परस्त' आदि विशेषणों से युक्त कराया । पाठकगण सहस्र-शीर्षापुरुषः इत्यादि वेदमन्त्रों का भ्रमात्मक अर्थ कदापि ग्रहण न करके यही इसका सत्यार्थ जानें कि जिस सर्वव्यापी परमेश्वर के आधारसे अनेक आंख अनेक पद आदि अवयव विश्वमें स्थिर हो रहे हैं और जिन समस्त पदार्थों में सर्वा-न्तर्यामी रूप होकर वह विराजमान हो रहा है इत्यादि विशेषणों से वह परमात्मा युक्त है नकिस्वतः स्थूलाकार शिर नेत्रादि सहस्रों अंगोंको धारण किये हुवेहैं और यदि यह बात है तो वेदादि सच्छास्त्रों में जो उसको निराकार निरवयवादि विशेषणयुक्त वर्णन कियाहै वहां उन शब्दों और वाक्योंका क्या अर्थ लगा, श्रागे । इसही प्रकार सत्यविद्या और सत्यशास्त्रों

के ज्ञानके अभावमें पण्डितजी प्रमत्त प्रलापके सदृश "नमस्तेरुद्रमन्य० इस वेदमन्त्रका अर्थ भी ऐसा बेठीक ठिकाने अण्ड बण्ड शब्दोंमें बर्णन करतेहैं कि विद्वान् लोग तो उस को पाठ करते अत्यन्त लज्जावान् होते होंगे परन्तु पुस्तककार को तनिक भी इस प्रकारका असम्भव वाक्य वेदार्थ के नामसे लिखनेमें लज्जा न आई अर्थात् पूर्वोक्त मन्त्रमें मङ्गाशय परमेश्वर की क्रोधयुक्त मूर्ति सिद्ध करके उसको बाणादि शास्त्रयुक्त कल्पना कर नमस्कार करते हैं कि जिस वाक्य का सत्यार्थ सभ्यजन इस भांति जाने और समझें।

अथ राजधर्मं उपदिशति।

यथा—(वेदभाष्यम्)

ओं नमस्ते रुद्रमन्यवऽउतोतऽइषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः॥ १॥ यजु० अ० १६॥

पदच्छेदः—नमः। ते। रुद्र। मन्यवे। उतोऽइत्युतो। ते। इषवे। नमः। बाहुभ्यामिति बाहुऽभ्याम्। उत। ते। नमः॥१॥

पदार्थः। (नमः) वज्रम् नम इति वज्र ना० निघं०२।२० (ते) तवोपरि (रुद्र) दुष्टानां शत्रूणां रोदयितः। कतमे रुद्रा इति दशेमे पुरुषे प्राणा एकादश आत्मा। एकादश रुद्राः कस्मादेते रुद्रायदस्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथरोदयन्ति यत्तद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्राः। इति शतपथ ब्राह्मणे। रोदेर्णिलुक् च।

अनेनोणादिगण सूत्रेण रोदि धातोरक् प्रत्ययो णिलुक् च। (मन्यवे) क्रोधयुक्ताय वीराय (उतो) अपि (ते) तव (इषवे) इ-ष्यातत्रभीक्ष्णं हि नस्ति शत्रून् येन तस्मै (नमः) अन्नम्। नमइत्यन्नना० निघं० २।७ (बाहुभ्याम्) (उत) अपि (ते) तव (नमः) वज्रम्॥

अन्वयः। हे रुद्रते नमोऽस्तु। उतो इषवे ते नमोस्तु। उतते बाहुभ्यां नमोस्तु॥ १॥

भावार्थः। ये राज्यञ्चिकीर्षेयु स्ते बाहुवलं युद्धशिक्षा शस्त्रास्त्राणि च सम्पादयेयुः॥ १॥

भाषामें पदार्थ। हे (रुद्र) दुष्ट शत्रुओं को रुलाने हारे राजन् (ते) तेरे (मन्यवे) क्रोधयुक्त वीर पुरुषकेलिये (नमः) बज्र प्राप्त हो (उतो) और (इषवे) शत्रुओं को मारने हारे (ते) तेरे लिये (नमः) अंत प्राप्त हो (उत) और (ते) तेरे (बाहुभ्याम्) भुजाओं मे नमः बज्र शत्रुओं को प्राप्त हो॥१॥

भावार्थ। जो राज्य किया चाहैं वे हाथ पांवका बल युद्धकी शिक्षा, तथा शस्त्र और अस्त्रोंका संग्रह करें॥१॥

विचारनेका स्थान है कि उल्लिखित वेद वाक्यद्वारा क्या उत्तम राजधर्मका उपदेश तो मनुष्यों को किया गया है और क्या अनर्थ पुस्तककार उसका अर्थ करनेमें करते है कि सच्चिदानन्द निरवयव नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावादि गुणविशिष्ट परमात्मा को क्रोधरूप शस्त्रबद्धादि दोष युक्त सिद्ध कर दिखाया।

पु०का०--८१८पं३--पृ१८पं ३ पर्य्यंत॥

स० ऊपरके लेख में ब्राह्मणोस्य मुखमासी० इस वाक्य के द्वारा पुस्तककार परमेश्वर के मुखादि अंग सिद्ध कर के ब्राह्मणादि वर्णों की उत्पत्ति वर्णन करतेहै परन्तु हमे उनकी विद्या और ज्ञानशक्ति के विषय में बारम्बार निरीक्षा करते

लज्जा आती है कि वह वेदादि शास्त्रों के यथार्थ तात्पर्य समझने को असमर्थ हैं वा यह बात हो कि जान बूझ कर स्वार्थ सिद्धार्थ बावली का स्वाङ्ग बनाते हों। परन्तु कुछ हो बुद्धि शील जन बिचारें कि जिस दशामें परमात्मा निरवयव निराकार और सर्वथा स्थूलत्व रहित सिद्ध हो चुका तो वह मुखादि अंग वाला क्योंकर होसक्ता है कि जिनमें से ब्राह्मणादि वर्ण उत्पन्न हो आये। हे! अविद्या चाण्डाली वह कौनसा अनर्थ है जो तैंने भारत में प्रवेश करके शेष छोड़ा है। कहां तो 'एतद्देश प्रसूतस्य यह मनु जी महाराज का वाक्यजो यह दिखाता है कि एक दिन वह समय था कि भूगोल मात्र के मनुष्य विद्यादि सत्य ज्ञान उपार्जनार्थ आर्य्यावर्त का आश्रय लेते थे और कहां यह समय कि ईश्वरवाणी वेद समस्त सत्यविद्याओं और सत्य व्यवहारों का कोष इस प्रकार के असम्भव और मिथ्या लेखों से युक्त किया जावे कि सृष्टि क्रम से विरुद्ध मुख बाहु आदि अंगों से मनुष्य उत्पन्न होते हैं न जाने पश्चात् में यह नियम क्यों भङ्ग हो गया जो ब्राह्मण क्षत्रिय आदि की उत्पत्ति का एक ही प्रकार हो गया। भला जब कि यही व्यवस्था सत्य हुई कि परमेश्वरके मुखसे जो उत्पन्न हुवा सो ब्राह्मण और बाहु आदि से उत्पन्न हुवे का नाम क्षत्रिय आदि तो इसके विरुद्ध मनु जी ने यह क्या वाक्य अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ मनुस्मृति में लिखा है कि——

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तुविद्याद्वैश्यात्तथैवच॥ अ० श्लो०

अब कहिये कि जब विद्यादि श्रेष्ठ गुण और शुद्धाचारादि

उत्तम व्यवहार युक्त होने और न होनेसे मनुष्य क्षत्रिय आदिसे ब्राह्मण और ब्राह्मण से क्षत्रिय आदि शूद्र पर्यन्त बन सकते हैं तो आप की कथित मुखादि से उत्पत्ति कहाँ गई। सत्य मानो और हमारे कहे को विश्वास करो कि इस प्रकार की सत्य शास्त्रोक्त व्यवस्था भङ्ग करने का ही यह फल है जो भारत देश इस अधोगति को प्राप्त हुवा अर्थात् मनुष्य ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर और केवल नामाभिमानी बन विद्यादि श्रेष्ठ गुणों के प्राप्त करने को तिलांजलि प्रदान करने लगे क्योंकि सत्य मर्यादा नष्ट होने से यह भयतो रहा ही नहीं कि यथोक्त विद्यादि गुण युक्त न होने से कुल को प्राप्त हो जावेंगे और उधर नीचे कुल के मनुष्यों का उत्साह विद्याध्ययन आदि उत्तम व्यवहारों से इस कारण हटा किवे दीन चाहै जैसे विद्वान् और श्रेष्टाचारी क्यों न बने जैसे के तैसे नीच ही समझे जावेंगे और आगे २ उनके पठन पाठन का भी निषेध होने लगा तथा विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण कुलको प्राप्त हुवे और मातंग चाण्डाल कुलमें उत्पन्न होके श्रेष्ठ गुणों के बल से ब्रह्मर्षि हुवे इस प्रकार के इतिहासों को मन से लुप्त कर दिया आगे इस विषय में पण्डित जीने जो रूपक की शंका का समाधान किया है अर्थात् "जो सरूप पदार्थ हम ने सुने न देखे हों उनको रूपक मानकर स्थिति न माने तो क्या यह सत्य होगा" ऐसे समाधानों से पण्डित जी अपनी मन समझौती भले ही करलो अथवा भोले भाले लोगों को भी बह कालो परन्तु सत्य बात पर उनसे पानी नही फेरा जावेगा जिन अनदेखे पदार्थों की स्थिति मानी जाती है वह सर्वथा प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों से सिद्ध हुवा करते है अन्यथा इस प्रकार के अदृष्ट पदार्थों को नही मान सकते जैसा कि

बन्ध्या के पुत्रकी बारात में जाना, आकाश के पुष्पों की सुगन्धि लेना ईश्वर के रूप को रूपक न मानना इत्यादिकों की स्थिति माननातो असम्भव श्रेणी में है जैसा कि:—

ब्राह्मणोस्य मुख० ।

इस वेद वाक्य में जो रूपकालंकार है उसको न मानकर अर्थ का अनर्थ समझते और अन्य अल्पज्ञ मनुष्यों को भी भ्रमाते हैं उनके उस हठ और अज्ञानान्धकार की निवृत्ति के हेतु दिग्दर्शनवत् (नमूने मात्र) एक ऋग् वेदका मंत्र तथा उसही मंत्रकी व्याख्या जो महाभाष्य में महर्षि पतंजलिने की है सो लिखते हैं। तद्यथा—

चत्वारि शृंगात्रयो अस्य पादाद्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्यत्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यों आविवेश ॥ महाभाष्यः—(चत्वारिशृंगाः) नामाख्यातोपसर्ग निपाताश्च (त्रयोअस्यपादाः) भूत भविष्यद्वर्त्तमानाः कालाः ।

अब पुस्तककार महाशय से प्रार्थना है कि उक्त मन्त्रके विषय को किसी श्रेष्ठ विद्वान् अध्यापक की सहायतासे अध्ययन करें जिससे हृदय की जड़ता दूर होकर ज्ञान का प्रकाश हो और यदि इस पर भी रूपकालंकार को न समझें तो क्या आपदर्शनशास्त्र के विरुद्ध अनूठे विश्वकर्मा बनकर शब्दके भी शृंग, चरण, हस्तादि अवयव जोड़ने में परिश्रम उठावें

पु० का०—पृ० १८ पं ४—पृ० २१ पं १८ पर्य्यन्त ।

स० उपरोक्त लेख में पुस्तक कार इस प्रकार कटाक्ष करते हैं कि क्या आज तक सब मनुष्य अज्ञानी ही होते चले आये जो मूर्त्ति पूजन करते रहे और व्यासआदि ऋषियोंने अश्रेय-

स्कारी जान क्यों उसे उठाने का उपाय न किया और उसे अपनी पुस्तकों में क्यों स्थान दिया॥ सम्भलो २! घवराओ नहीं उलटा चोर कोतवाल कोदंण्डे जो लोग ऋषि महर्षि आप्तजनों को पाषाणादि जड़ पदार्थों का पूजक बनाकर उनके सुसभ्यता, विद्यादि सर्वोत्तम गुणों में कलंक लगाते हैं, वे आप ही निरे अज्ञानी और पूर्वकाल की सत्य इतिहास विद्या से अविज्ञ समझे जाते हैं वास्तव में तो यही प्रत्यक्ष है कि इस प्रकार के व्यवहार उन पूर्ण धर्म्मात्मा सत्यशील जनो के समय में स्वप्नवत् भी नही थे श्रीमहर्षि बाल्मीकि प्रणीत ग्रन्थ रामायण के वाल काण्ड से लेकर युद्ध काण्ड के अन्त पर्य्यन्त इस विषयका एक अक्षर भी नही है कि अमुक रघुकुल सन्ताननेया अमुक ऋषिआदि आर्यगणों में से किसी ने भी धातु काष्ठ पाषाणादि जड़ पदार्थों की अमुक १ देवता के नाम की मूर्त्ति रचकर पुष्प गन्ध नैवेद्यादि युक्त पदार्थों से उसका पूजन किया हो० वा वस्त्र अलंकारादि धारण कराये हों वा उसके सम्मुख धन भेट किया हो० वा भोज्य वस्तु भोगार्थ समर्पण की हो परन्तु हां अग्निहोत्र पञ्चयज्ञ तथा वेदपाठादि कर्म्मोंका वर्णन तो अनेक स्थानों में विद्यमान है रावण महादेव जी का लिङ्ग पूजने के विषय में पण्डित जी ने जो प्रमाणदिया सो वह उत्तर काण्ड का लेख है जिस को कि आजकल की पाठशाला ओ के छोटे २ छात्र भी जाने हुवे हैं कि वह सप्तम काण्ड तो समग्र और पूर्वके छः काण्डों में मद्य मांसादि सेवन विषयक तथा अन्योन्य सृष्टि क्रम प्रतिकूल और आप्त सिद्धान्त विरुद्ध लेख सर्वथा पश्चात् की बनावट है क्योंकि वाल्मीकि जीका लेख तो युद्धकाण्ड के साथ ही समाप्त हुवा प्रत्यक्ष दीख रहा है और शेष के काण्डों में जिन २ वाक्यों में विरोध, असंगत विषय पूर्ण

हैं वह आप्त वचन किस प्रकारसे हो सकते हैं यदि यहमान भी लिया जावे कि रावण शिवलिंग आदि वस्तुओंका पूजन करता ही था तो सिद्ध हुवा कि इस प्रकार के वेदादि सत्य-शास्त्र विरूद्ध कर्मों मे प्रवृत्त होने ही से रावणादि के राक्षस नाम पड़े बस इसही प्रकार मनमाने कार्य साधक असम्भव विषयों से युक्त अनेक ग्रन्थ महर्षि व्यास देव का नाम रख २ कर रचडाले कि जिनकी अयुक्तियों का अन्तही नहीं भला जड़ वस्तुओं का पूजा विधान उक्त महर्षि के मन्तव्यानुकूल होता तो शारीरक सूत्र योगशास्त्र के भाष्यादि व्यासोक्त ग्रन्थों में इस प्रकार के अयुक्त व्यवहार का लेश क्यों नही है आगे "नत-स्यप्रतिमा०" यद्यपि इस लेख में पुस्तककार परमात्मा के स-मान नापवाला तथा जिस द्वारा उसका प्रमाण किया जाय इस प्रकार की वस्तु न होना स्वीकार करते हैं तथापि अपनी विपरीत आग्रह युक्त वृत्ति से इतने आतुर हैं कि संसार में अपना उपहास कराना परमेश्वर के यथार्थ गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध उसे सिद्ध कराना ऋषि मुनि आदि आप्तों के विषय में विपरीत सम्मति प्रकाश करना इत्यादि सब कर्म तो शिरधरे परन्तु सत्य को सत्य ही अंगीकार करना और सहज में उक्त दोषों से रहित होना अधर्म ही समझा भला आकाशादिक तथा व्याप्य स्थूलादि जड़ पदार्थों को आप परमात्मा की प्र-तिमा और उसही के तुल्य कौन से न्याय सूत्र से सिद्ध करते हो कृपाकर उसे भी प्रमाण के लिये लिखा होता, अर्थात् कौन से न्याय सूत्र अथवा न्याय वचन में आकाश और व्याप्य जड़ पदार्थों के सदृश ईश्वर स्थूल और व्यापक सम्बन्ध क्या होता है इसका भी ज्ञान आप को नही है तनिक ध्यान देकर विचारिये कि जब मिश्री और जलका परस्पर संयोग होके

से शर्वत वनाया जाता है तो प्रत्येक दोनो द्रव्य व्याप्य व्यापक सम्बन्ध भाव सहित हुए वा नही कहो कि हुवे, तो क्या फिर आप की उलटी मतिके अनुसार मिश्री और जल स्वरूप में तुल्य हैं अथवा मोती मूंगा आदि तंतु में पिरोये जाकर उनकी जो माला बनती है तो क्या उस पिरोये जाने से मोती आदि और तंतुका व्याप्य व्यापक सम्बन्ध नहीं ठहरता जव इस प्रकार के जड़ पदार्थ परस्पर संयुक्त होकर भिन्न २ रूप और भिन्न आकार के रहते हैं तो चैतन्य स्वरूप अनन्त और असीम परमेश्वर को व्यापक भाव होने से स्थला काशादि जड़ पदार्थों के तुल्य मूर्त्तिमान् सिद्ध करना विद्वान् लोग आपका वड़ा यह अन्याय शास्त्र कभी स्वीकार न करेंगे और जव कि प्रतिमा शब्दका अर्थ परमेश्वर में किसी प्रकार घटता ही नहीं तो यह कहना कि परमेश्वर अपनी प्रतिमा और तुल्य नामका आप ही हुवा ऐसा असम्भव है जैसा कि यह कहना कि सोमदत्त अपने सव कुटुम्बी जनों में केवल अपनी माता ही से आयु मे दो वर्ष वड़ा है और किसी से नहीं॥

तदेवाग्नि दास्तदित्य स्तद्वायु।

वेद वचनों में जो सूर्य्यचन्द्रादि नाम वर्णन हो रहा है, उनसे वहां एक अद्वितीय परमेश्वर का ही ग्रहण है इतर लोकादि जड़ पदार्थों का कदापि नही जैसा कि आप की समझमें आरहा है और प्रत्येक पदार्थों में व्याप्त होनेसे जो सम्पूर्ण जड़ पदार्थो को आप परमेश्वर और उपास्य समझते हो इसका समाधान गत पृष्ठों में जहां "यः पृथिव्यां तिष्ठन्०" वाक्य लिखे गये पूर्ण रीति से हो चुका है। न्याय शास्त्रद्वारा परमेश्वर की प्रतिमा कदापि सिद्ध नहीं होती. हां आप के

वर में अन्याय शास्त्रसे होती होगी इस कारण "यथार्थतोऽप्रतिमा स्वार्थतः प्रतिमा" आप इस पुस्तक का नाम रखलेते तो ठीक था।

पु० का०—पृ२१ पं २०—पृ १३ पं १६ पर्यन्त।

स० भला इस प्रकार के असम्भव प्रलाप करनेसे जैसे कि पुस्तककारने ऊपरके लेखमें प्रकट किये हैं कहीं ईश्वर का स्थूल रूप होना अथवा पण्डित जी के उद्योग से पाद्यार्घ्य आदि सामिग्रियों के प्राप्त किये बिना उसका क्षुधा पिपासादि से युक्त होना लेशमात्र सिद्ध होगा? क्यों बैठे बैठाये ऐसे बचन लिख२ ठट्ठा कराया है?।

आत्मा वारेद्रष्टव्यः। आदि वाक्यसे परमात्माके यथार्थ रूपको इन चर्म्ममय नेत्रों द्वारा दर्शन करने के अभिलाषी न हूजिये नहीं तो वृथा मृग तृष्णा में आयु नष्ट हो जावेगी। हां ईश्वर के ज्ञानस्वरूपादि विशेषणों को हटा करके (यदि आपमें शक्ति हो) भले ही और कुछ दोषारोपण करके उसका स्थूलाकार होना रटा कीजिये परन्तु ऐसा करोगे तो आज कल के अनीश्वर वादी (Atheist) लोग (जो ईश्वर को स्थूल रूप में देखने के अर्थ बड़े२ मार्ग छान रहे है) आपका जगत् में रहना तक बन्द कर देवें गे और आप के नाक में श्वासा आजावेगी जब भुजा पकड़ कर आपसे पूछेंगे कि जिस प्रकारका ईश्वर धर्म्मग्रन्थों में वर्णन हो रहा है प्रत्यक्ष स्थूल शरीर युक्त दिखाइये कहां है तब आपको बल वह है कहते नहीं बनेगी। इस लिये उचित यही है कि उक्त बाक्य में जो परमात्मा को देखना कहा है उससे यही अभिप्राय जानो कि तपोबलके द्वारा उस का शुद्धज्ञान प्राप्त करना है सो ही उस सर्वव्यापी का देखना है अर्थात् प्रथम जीव लोग परमेश्वर के

श्रवण करने की चेष्टा करें तत्पश्चात् जितेन्द्रियता सहित उनको अपने आत्मा में धारण करके मनन करें अन्त में शुद्ध ज्ञान द्वारा ध्यानावस्थित हो कर उसका दर्शन करें। यथाः—

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा।
नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञान प्रसादेन विशुद्ध सत्व।
स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥

अर्थ। आंख से, वाणी से, वा अन्य किसी इन्द्रिय से उसे कोई ग्रहण नहीं कर सकता, न तपस्या वा कर्मसे ज्ञानके प्रसादसे जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, तब उस निर्म्मल स्वरूप का ध्यान करनेसे उसे (उपासक) दर्शन करता है।

सम्पूर्ण विश्वके जड़ पदार्थ किस भांति परमेश्वर के शरीर हैं और किस भांति वह उनसे भिन्न कहा गया। इस विषय में पूर्व पृष्ठों में विस्तार सहित वर्णन कर चुके हैं वहीं देख लीजिये बारम्बार पिष्टपेषण करके पाण्डित्य जताना आपही के ऊपर शोभा देता है।

आगे आप "सपरं दिवमन्वावर्त्त०" इस वाक्य के प्रमाण से देवताओं की प्रतिमाओं का रोना हंसना नांचना कांपना खिलना आदि सिद्ध करते हैं। वाह २ मारलिया है काम। देवताओंकी जड़मूर्ति रचना, उनको वस्त्राभूषणादि धारण कराना। पुष्प गन्ध नैवेद्यादि उनको समर्पण करना इत्यादि व्यवहार तो वेदादि सत्य शास्त्रों में ढूढ़ न पाये। पण्डित जी ने विचारा कि चलो उनका गाना पीटना और टूटना नाचना कूदना ही किसी भान्ति सिद्ध करके काम लेलो। अब तो नांच भी नचा चुके और कौन से अनहोने कौतुक इन दीन

देवताओंसे कराना चाहते हो ? क्षमा करो बहुत हुई। कृपा करके यह तो बताइये कि यह आप को किस विधि निश्चय हुवा कि उपरोक्त क्रिया जड़ प्रतिमाओंमें सङ्घटित हैं भला जो वस्तु नाचे कूदे हंसे अथवा रोदन करें उसे कोई निरा अनजान भी जड़ कह सकता है ? क्यों अन्धकार में धंसे पड़े हो। आंख खोलो और ज्योति में आकर देखो पूर्वोक्त सब चेष्टा करना चेतन व्यक्तियों का धर्म है जड़ का नहीं यदि जड़ भी ऐसा ही किया करें तो चेतनसे उनका किस बातमें भेद रहा, तदुपरान्त आजकल भी तो मन्दिरोंमे देवताओं ही की प्रतिमा विराजमान हैं किसी स्थान में कहीं इस प्रकारकी चेष्टा आज तक किसी प्रतिमाने की है विशेषत: सम्प्रति कि जब चारो ओर से उनके विरुद्ध हा हा कार पड़ रहा है दिनो दिन सत्यका प्रकाश होनेसे लोगों की श्रद्धा उनसे नष्ट हुई जाती है ऐसे समय में तो क्षणमात्र भी प्रतिमाओं को चुप होकर नहीं बैठनाथा और महा कोलाहल के साथ मनुष्य मात्र को अपना भक्त बनाना उचित था, जो कहो कि केवल पूर्वकाल की प्रतिमा चेतनवत् चेष्टा कर सकती थीं वर्तमान की नही। तो यह लिखा दिखाइये कि कब से और किस कारण इस व्यवहार का प्रतिबन्ध हुआ। जिसे आप वेद वाक्य कह रहे है सो सामवेद संहिता का मन्त्र नहींहै षड्विंश ब्राह्मणमें वेद विरुद्ध होनेसे प्रक्षिप्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं माना जा सकता।

पु० का०—पृ २२ पं १७—पृ २९ पं०३ पर्यन्त।

ऊपर के लेखमें मनुस्मृतिके प्रमाणोंसे जो जड़ पदार्थों की पूजा सिद्ध करने का परिश्रम पु० का० ने किया सो हम उनके व्यर्थ समय नष्ट करने पर अत्यन्त शोक करते हैं, क्योंकि

यह वह ग्रन्थ कदापि नहींहै कि जिससे वह स्वार्थ दिद्ध करने की कपोल कल्पित अनाप्त व्यवहारों को प्रामाणिक कर सकें ८ वें अध्याय ८५ वे श्लोक "मन्यन्ते वै शापकर्त्ता" में देवता शब्द का अर्थ समझने को आप समर्थ न होवें तो वह दोष मनुजी में नहीं लगाया जा सकता। उक्त वचन में यह तो नहीं लिखा कि मन्दिरों में गणेश भैरवादि जो जड़ मूर्ति देवता कहलाती हैं वह पापियों को देखती है! वहां तो मनुजी यही कहते हैं कि "पापी लोग यह विचारते हैं कि हमे कोई नहीं देखता परन्तु उन्हे उनका आत्मा और देवता (परमेश्वर) देखता है" कृपा करके आप यहां थोड़ीसी बुद्धिको भी काम में ले आवें तो बात बन जावे भला सर्वज्ञ और सर्वान्तर्य्यामी एक परमात्मासे भिन्न कभी कोई दूसरा सिद्ध हो सकता है? बस तो देवता शब्द से यहां परमेश्वर का ग्रहण है अन्य किसी का नहीं।

८ अध्यायके ८६ वें श्लोक "द्यौर्भूमिरापोहृदयं" में भूमि जल वायु सूर्य्यादि जो जानने वाले वर्णन किये हैं उससे यह अभिप्राय है कि सर्वव्यापी परमात्मा भूमिमें जलमें हृदयमें सूर्य्यादि लोकों अर्थात् सम्पूर्ण विश्वमें विराजमान है वह समस्त प्राणियोंके कर्मों को जानता है अर्थात् पाप करनेवालों को विचारना चाहिये कि भूमि जल वायु आदि पदार्थों का नाम वर्णन होनेसे कोई भी वस्तु परमात्मा से अतीत नहीं है कि जहांके किये कर्म वह न जानता हो अतः पाप करनेसे प्रत्येक स्थानमें बचना चाहिये। खेतोंमें जाकर देखिये यही सुनाई पड़ेगा कि मंचान पुकार रहे हैं परन्तु मंचान काष्ठ के बने हुवे एक टीले का नाम है जो कि जड़ होनेसे पुकार ही नहीं सकता तो तात्पर्य निकला कि मंचानों के पुकारने से उन

मनुष्यों के पुकारनेका ग्रहण होता है कि जो उनके ऊपर चढ़े हुवे बोलते हैं इसही प्रकार पूर्वोक्त सूर्यादि पदार्थों में परमात्मा का ग्रहण होगा विद्वानोंसे पूंछिये। ८ अध्याय ८७ वे श्लोक "देवब्राह्मण सान्निध्ये" में देवता शब्द से पूर्ण आप्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुषों का ग्रहण है मन्दिर और जड़ मूर्ति का तो चिह्नमात्र भी उक्त वाक्यों में नहीं पाया जाता (न जाने बढ़ाये हुवे वाक्यों को अपने बालादत्त स्मृति नाम से क्यों नहीं लिखा जिस दशामें मनुस्मृति में उनका नाम तक नहीं) उक्त श्लोक का अर्थ यह है कि राज पुरुष ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों की साक्षी देवता तथा ब्राह्मणों के सम्मुख लेवें और २४८ श्लो० "तड़ागान्युदपानानि" मे देव मन्दिर कूप बावड़ी आदि निर्माण करने की जो विधि कही है उस मे देवमन्दिर से यज्ञशाला सामगान पूर्वक ईश्वरोपासना आदि करने के स्थानों से अभिप्रायहै अर्थात् प्रत्येक नगरकी सीमा की सन्धि में यज्ञ करने के अर्थ तथा जहां सम्पूर्ण निवासी एकत्र होकर सदैव वेद मन्त्रों द्वारा परमेश्वर के गुण कीर्तन आदि से युक्त उपासना किया करें, इस प्रकार के स्थान रचने योग्य हैं परन्तु अमुक२ देवता की धातु पाषाणादिकी मूर्ति स्थापनार्थ मन्दिर बनाये जावें ऐसे वाक्यों का मनुजी के किसी श्लोक में चिह्न नहीं है। आगे देव जाती को जो मनुष्य जाति से पृथक् सिद्ध करते हैं सो वृथा कागज बिगाड़ कर अपनी पोल खोलते हे जो श्लोक आपने अपना अभिप्राय जताने को प्रमाण दियेहैं उनमेंसे यह अर्थ किसी का भी सिद्ध नहीं होता कि देवताओं का वंश कोई दूसरा ही है किन्तु १२ वें अध्याय के ४० वे श्लोक।

देवत्वं सात्विकायान्ति मनुषत्वं चराजसाः।

तिर्य्यक् त्वं तामसानित्य मित्येषा त्रिविधागतिः ॥

में प्रत्यक्ष हो रहा है कि सत्वगुण युक्त जनदेव, रजोगुण-वाले मनुष्य, तमोगुण सहित प्राणियोंका नाम राक्षसादि है, तथा—

देवांशान् सात्विकोभुङ्क्ते राक्षसांशांस्तुतामसः ।
राजसोमानवांशांस्तु सत्वं धार्य्यं मनस्ततः ॥

अर्थात् सत्व, रज, तम, गुणोंके अवलम्वन और आश्रयसे जन क्रमसे देव, मनुष्य, राक्षस, संज्ञाके भागी हैं तथा—

विद्वांऽसोहिदेवाः

यह शतपथ ब्राह्मणका वाक्य है जिसका अर्थ यह है कि विद्वान् पुरुषको देव कहते हैं। मनुस्मृतिके राजप्रकरणमें से श्लोक लेकर सूर्य्य चन्द्रादिके विषय में जो आपने देवता का ग्रहण किया है उसका समाधान इस प्रकार किया जाता है अर्थात् "दिवु" धातुसे देव शब्द सिद्ध होता है जिसके अर्थ दिव्य गुणयुक्त हुवे अर्थात् जिस२ पदार्थ में जो२ गुण जितना दिव्य है उतनाही उसमें देवपन है परन्तु सम्पूर्ण वस्तुओं के दिव्य गुणों का आदि कारण एक परमेश्वर ही सर्वोपरि पूज्य और उपास्य देव है क्योंकि इतर जितने व्यावहारिक देवता हैं वह सब उस एक सर्व शक्तिमान् ही की सत्ता द्वारा देवपनको प्राप्त हुवे हैं। तथा।—

देवोदानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो
भवतीति वा। निरु० अ० ७ ख० १५

अर्थात् इस निरुक्त वचन से यह अर्थ सिद्ध है कि (देवो-दाना०) दान देनेवाले की देव संज्ञा होती है और दान

नाम है अपनी वस्तु पराये उपकारार्थ दे डालनेको तो विद्वान् तथा अन्य धर्म्मात्मा पुरुष जो विद्यादि दान करके दूसरों को लाभ पहुंचाते हैं वह देव हुवे तथा दीपन कहते हैं प्रकाश करनेको इससे क्या आया कि सम्पूर्ण मूर्त्तिमान् द्रव्योंके प्रकाशक सूर्य्य चन्द्रादि जो लोक हैं सो देव अथवा माता पिता बन्धादि जो पालन पोषण करते हैं वह भी एक प्रकारके संसार में प्रकाश करनेवाले होनेसे देव है और द्योतन कहते हैं सत्योपदेशको सो माता पिता आचार्य्य आदिजो हृदयमें सत्य शिक्षा और सत्य ज्ञानका प्रकाश करते हैं उनका नाम देव हैं परन्तु प्रत्येक सुख युक्त और उत्तम पदार्थों का देनेवाला तथा विश्वमात्र को प्रकाश करनेवाला और वेदादि सत्य विद्या और ज्ञान द्वारा सत्योपदेश करनेवाला परमेश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं इस लिये वही परम देवता है। इसमे काठोपनिषद् का प्रमाण है। यथा—

न तत्र सूर्य्योभाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः। तमेवभान्त मनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्व मिदं विभाति॥

इति कठ० वल्ली ५ मं० २५।

अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, तारे, बिजुली, और अग्नि ये सब परमेश्वर में प्रकाश नहीं अर सकते किन्तु इन सबका प्रकाश करनेवाला एक वही है क्योंकि परमेश्वर के प्रकाश से ही सर्य आदि सब जगत् प्रकाशित हो रहा है इसमें यह जानना चा-

हिये कि ईश्वर से भिन्न कोई पदार्थ स्वतन्त्र प्रकाश करनेवाला नहो है इस से एक परमेश्वर ही मुख्य देव है ।

अब वेदों में जो तेंतीस व्यवहार के देव वर्णन हो रहे हैं (जो आजकल तेंतीस क्रोड़ माने जाते हैं) सो यह हैं । ८ बसु अर्थात् जिनमें सब पदार्थ वास करते हैं यथा १ अग्नि २ पृथिवी ३ वायु ४ अन्तरिच्च ५ आदित्य ६ आकाश ७ चन्द्रमा ८ नच्चत्र ; ११ रुद्र यथा १ प्राण २ अपान ३ व्यान ४ समान ५ उदान ६ नाग ७ कूर्म्म ८ क्षकल ९ देवदत्त १० धनञ्जय ११ जीवात्मा देह समाप्त होने पर ये ग्यारह सम्बन्धियों को जो रुलाते हैं इस कारण इन्हें रुद्र कहते हैं । १२ आदित्य अर्थात् सबकी आयु ग्रहण करनेवाले बारह महीनोंका नाम आदित्य है ये सब ३३ देव हैं । परन्तु इन व्यवहार के देवताओंकी उपासना करनी सर्वथा अनुचित है इसमें निरुक्त का भी प्रमाण है यथा,

महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तुयते एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि-भवन्ति । कर्म जन्मान आत्मजन्मान आ-त्मैवैषां रथोभवत्यात्माऽश्वा आत्मायुध मात्मेषव आत्मा सर्वं देवस्य देवस्य ॥

नि० अ० ७ खं० ४ ।

अर्थात् व्यवहारकी देवताओंकी उपासना कभी नहीं करनी चाहिये किन्तु एक परमेश्वर ही की उपासना करनी उचित है इसका निश्चय वेदोंमें अनेक प्रकारसे किया है कि एक अद्वि-तीय परमेश्वर के ही प्रकाश, धारण, उत्पादन करनेसे वे सब

व्यवहारके देव प्रकाशित हो रहे हैं इनका जन्म, कर्म्म और ईश्वरके सामर्थ्य से होता है और इनका रथ अर्थात् जो रमण आयुध अर्थात् सब शत्रुओं के नाश करनेका हेतु और इषु अर्थात् जो बाणके समान सब दुष्ट गुणों का छेदन करनेवाला शस्त्र है सो एक परमेश्वर ही है क्योंकि परमेश्वरने जिस जिस में जितना जितना दिव्य गुण रक्खा है उतना २ ही उन द्रव्यों में देवपन है अधिक नहीं इससे क्या सिद्ध हुआ कि केवल परमेश्वर ही उन सबका उत्पादन धारण और मुक्तिका देनेवाला है अर्थात् एक अद्वितीय परमेश्वर के प्रकाश, धारण, उत्पादन आदि से वे सब व्यवहारके देव प्रकाशित हो रहे हैं जितना २ उनमें दिव्य गुण रखा है उतना उतना ही उन द्रव्यों में देवपन है परन्तु सबका आदि मूल होनेसे एक परमेश्वर ही उपासनीय इष्टदेव हैं।

पु० कार्य्ये पृ० २८ पं० ४—पृ० ३८ पं० ८ पर्य्यन्त।

स० देवताओंके विषय में जो पुस्तककार महाशयने "स इक्ष्यते मेनु लोका०" जो ऐतेरयोपनिषद्का प्रमाण दिया है उक्त बचनसे तो यदि ऐसा अलंकार समझाते कि वह इन्द्रियोंके विषय का प्रकाश है तब तो सहज़ ही निबट चुकी थी जैसा कि नासिका से वायु वायुसे प्राण अर्थात् घ्राणेन्द्रिय प्राण को वाहर भीतर निकालने के लिये है। तथा अक्षिसे चक्षु चक्षु से आदित्य अर्थात् जैसा सूर्य पदार्थोंके दर्शनार्थ रचा है वैसे चक्षु भी। तथा त्वचासे लोम, लोमोंसे ओषधि अर्थात् जैसे त्वचा में लोमों से स्वेद निकलता है तब शरीरको स्वच्छता प्राप्त होती है वैसे ओषधियों से भी शरीर को स्वच्छता प्राप्त होती है इत्यादि अलंकारों का होना तो सब प्रकार सम्भव है परन्तु पण्डित जी तो निराली ही ध्रुवपद आलाप करते है।

"ता एतादेवता: सृष्टा अस्मिन्महार्णवे० ।

अर्थ । तब परमेश्वरने उक्त देवताओं को संसार समुद्रमें फेंका ठीक है अर्थात् जिनको आप देवता मान रहे हैं वस्तुत: वे इन्द्रियां हैं कि जिनके अर्थों को संसार समुद्र अर्थात् सब संसारस्थ जीवोंमें परमात्माने धारण किया ।

"तमशना पिपासाभ्या मन्ववार्जता अब्रुव- न्नायतनं न: प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्न मदामेति ।

अर्थ । तब परमेश्वरने अण्ड रूपी पिण्डको क्षुधा पिपासा से युक्त किया इत्यादि कथनों से यही सिद्ध होता है कि जब सब जीवों कों इन्द्रियोंके अर्थ प्राप्त हुवे तब जीवों की क्षुधा पिपासादि विषयों में प्रवृत्ति हुई बस हम ऐसे विषयों पर विशेष लेखनी घर्षण नहीं करते कि जैसा पुस्तककार धर्म्मध्वजने उक्त इन्द्रियोंका बोलना इस प्रकार ईश्वर से परस्पर उत्तर प्रत्युत्तर करना कि हमें स्थान बताओं जहां स्थित होकर हम अन्न खायं इत्यादि बचनोंमें यदि उपरोक्त अलंकारका अभिप्राय न समझेंगे तो अन्धकूपमें नही तो कहां पड़ेंगे ?

अब जो पुस्तक कारने अग्नि, बायु, मनु प्रजापति इत्यादि देवता सिद्ध करनेमें "एतमेकेवदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् । इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम् मनु० अ० १२ श्लो० १२३" यह प्रमाण दिया है इसमें तो साधारण मनुष्य भी जान कर लेंगे कि श्लोकोक्त नाम परमेश्वर के हैं देवता शब्द का लेश मात्र भी उक्त वाक्यमें नहीं आया । तदित्थम् (अञ्चु गति पूजनयो:) इस धातुसे अग्नि शब्द सिद्ध होता है अर्थात् सबका पूजनीय

होने से अग्नि नाम परमेश्वरका है। मनु। सबके मनन करने योग्य। प्रजापति। सब प्रजा अर्थात् जगत् का पालन करनेवाला (इदि परमैश्वर्ये) इस धातुसे इन्द्र शब्द सिद्ध होता है अर्थात् जो सबसे अधिक ऐश्वर्यवान् है वह परमेश्वर है प्र पूर्वक (अन् प्राणने) इस धातुसे प्राण शब्द सिद्ध होताहै जो सब प्राणियों को जीवन शक्ति देनेवाला है-उसही को ब्रह्म कहते हैं तथा —

तदेवाग्निस्तदादित्य स्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः !
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्मताआपः स प्रजापतिः ॥
यजु० अ० ३२) इत्यादि मन्त्र भी जोकि।
अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देव मृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।

इत्यादि मन्त्रोंमें अग्न्यादि की स्तुति कीई है वहां परमेश्वर ही का ग्रहण करनेमें प्रमाण हैं किन्तु शब्द शास्त्र से तो अन्यादि नाम प्रकाशानुसार सिद्ध करही चुके थे परन्तु पुस्तककारने (तदेवाग्नि०) यह श्रुति स्मरण करा दी! इसमें वही दृष्टान्त उपयुक्त होगा कि—"अन्यार्थेयः खनेत्कूपं स्वयं तत्र पतिष्यति" किसीने किसीके डुबाने के लिये कूप खनन किया परन्तु वह यह नही जानना था कि मैं ही इस कूपमें गिरूंगा यह देवता विषय पर संक्षेप से समीक्षा की विचारशील जन इतनेही मे बहुत कुछ समझ लेंगे।

मूर्ति पूजाका भूगोल वर्णन अनुसार प्राचीनकाल से चला आना।

पु० का० पृ० २७ प०६—पृ० ४३ पं० ७ पर्यन्त।

स० हमारी समझमें ऊपरके लेख से पुस्तक कारका अभि-

प्राय यह बात प्रसिद्ध करना भान होता है कि वह कुछ२ इतिहास विद्या में भी योग्यता प्राप्त किये हुवे हैं अर्थात् अपने आपको इतिहास वेत्ताओं में परिगणन कराया चाहते हैं इसके उपरान्त एक विद्वान् का यह वाक्य भी संग ही स्मरण हो आया कि जिस प्रकारसे मनुष्य धन सम्पन्न होकर धनके प्रभाव से उत्तम और निकृष्ट कर्म्म में स्वेच्छानुकूल उसका व्यय कर सकता है अथवा एक बलवान पुरुष अपने शरीर औ बल द्वारा दीनों की रक्षा तथा उनको पीड़ित कर सकता है वैसे ही विद्या का ज्ञान भी मनुष्य में एक प्रकार की शक्ति है वह चाहेतो उसके बलसे सत्यासत्यका निर्णय धर्म्माधर्म्म की परीक्षा करके संसार का उपकार चाहे उसको उलटे वर्त्तावमें लाकर स्वात्मघाती बन दूसरों की महा हानि करडाले तात्पर्य्य कथन से हमारा इतना ही है कि पण्डित जीनें प्राचीन समय के ऋषि महर्षि आदि योगी जनोंके देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में जहाज आदि यानोंके द्वारा यात्रा करने का ज्ञान तो प्राप्त किया परन्तु इस प्रकार के व्यवहार युक्त होनेसे ऋषी श्वरोंके पराक्रम उनेकी पूर्ण विद्वत्ता कलाकौशल शिल्पादि विद्याओं में कुशलता और उनके पूर्णधर्म वत्सलतादि श्रेष्ठ गुणों की प्रशंसा और यह कहना कि भूगोल के प्रत्येक भाग में पर्य्यटन करने और सत्य विद्या और सत्य व्यवहार स्थापन करने में वह पूर्ण बलवान थे भाड़ और चूल्हे में गये इसके बदले उलटा उन धार्म्मिक जनोंको लोक पाषाणतत्व कृतृम आदि पदार्थों के पूजनेवाले और उनकी पूजा प्रचार करने वाले ड्रूइसआदि यूरोप देशकी जातियों में नरबलि अथवा और महानिष्ठुर व्यवहारों के प्रवृत्त करने वाले इत्यादि इस प्रकारके अनेक अश्लील विशेषणों से युक्तकर डाला हाय हाय है भारत कहांती तेरे वह

परम योगीश्वर सुयोग्य सुविचक्षण गौतम कणादसरीखे विद्यारूपी Machine (यंत्र) तत्व मीमान्सक तथा तृण पर्य्यन्त पदार्थोंके सारबोधक कि जो प्रत्यक्षादि प्रमाण रहित व्यवहारों के मूल विनाशक और मर्य्यादाओंके जीर्णोद्धारक थे और कहां उनके और उनके सङ्ग तेरेमान और महत्वकी धूल उड़ानेवाले स्वार्थ सिन्धु सत्य और न्यायके नाम की जड़ काटनेवाले पुस्तककार सरीखे पंडिताभिमानीभी तेरीही सन्तान कहलावें हम पुस्तक कारसे अत्यन्त नम्र होकर प्रश्न करते हैं कि भला जिस दशामें वह ऋषि मुनि लोग भारत वर्ष से समुद्र यात्रा करने का परिश्रम और व्ययसहन करके भूमण्डलके प्रत्येक भाग में उपदेश करने जाया करतेथे भूगोलकी सम्पूर्ण जातिके मनुष्योंमे भिन्न२ प्रकार का धर्मोपदेश क्योंकिया ? जैसा कि भारत देश में मत प्रचलित हैं और जिस प्रकार के ब्रह्म वैवार्त्तादि जड़ पाषाण पूजा विधायक ग्रन्थ यहां के अनात्मिक तथा विद्यान्ध लोग ऋषि मुनि प्रणीत मान रहे हैं ठीक उसही प्रकार का मत और ठीक वेही ग्रन्थ अथवा उनका यथार्थ उलथा अनेक जाति भाषा ओं में क्यों नहीं है ? कौन से इतिहास में वर्णन है कि द्वीपद्वीपान्तर वासी गया में पिण्ड प्रदान करने आतेथे अथवा रामेश्वर जगन्नाथ बद्रीनाथ की यात्रा वा गङ्गा स्नानार्थ यहां पधारतेथे अस्तु अनेक द्वीप द्वीपान्तर में तो जड़ मूर्ति पूजन प्रचलित होना ऋषि मुनि गणों के उपदेशका फलथा परन्तु भारत देशमें गूगे पीर की यात्रा करना उसके नामका झंडा खड़ा करना ख्वाजे साहिब की दर्गाहमें शिर नमाना पीरान कलियर में सत्तर बलियोंको चादर चढ़ाने बाले मियां और गाजी मियां के नामका झंड़ा गाड़ना शेख सद्दो औरवोली कलन्दर की कबर पूजना महर्रममें ताजियोंके सन्-

मुख भेट अर्पण करके पुत्र पौत्रादि मत वांछित पदार्थों की जिज्ञासु होना इत्यादि अबा व्यवहार भारत वासी मनुष्यों में किसके उपदेश से प्रचलित हुवे यदि ऋषिगणोंके ही मस्तक पर यह भी कलङ्क का टीका खींचा आवेतो उन महात्माओं कातो नाम तक भी देश से लुप्त होगया था कि जिस समय में उपर वर्णितपीर और वलियोंका देश में जन्म हुवा और उनके सम्प्रदायी लोगोंमें ऋषि मुनियोंके नाम तक भी लेनेवालोंको काफिर बुत परस्त खुदा की वह दानियतसे जाहिल इत्यादि नाम धरकर शक्ति भर उनको नाना प्रकार की पीड़ा पहुं-चान उनके मत और निश्चय के कारण उनको अतिशय दुःख देना उनकी पूजनीय मूर्ति और स्थानों को नष्ट भ्रष्ट करना परम धर्ममानते चले आये है आज दिन वही लोग अपने घर-में तेतीस क्रोड़ उपास्य देवता रखने पर भी उन अपने प्राणशत्रु ओं की कबरों का पूजन किये विनाल्हमन होवे हा काल च-क्रकी विलक्षणताका कहांतक कोई पारावार पावे क्या यह आर्य्य देश यहां तक अज्ञान रूपी तिमिर से आच्छादित होना था कि जिसकी सन्तानकी यह बुद्धि हो जावे कि जिन माता पितासे शरीर प्राप्त किया जिनके रक्षा और प्रयत्नसे पालन पोषण हुवा उनका मृत देहतो इतना अशुद्ध और अपावन किया त-त्काल उसको घरसे वाहिर करके श्मसान भूमि में भस्मकर देवें और जिस स्थान वा गृहमें शरीर छूटा हो उसको गोबर आदि वस्तुओं से लेपन न करलेवें तावत्समय पर्य्यन्त यदि जल पान भी हो जावेतो सर्वथा धर्मका विनाशकारी माना जावे परन्तु जिन स्वमतद्रोही स्वात्मघातक पुरूषों की छाया भी जीवन कालमें धर्म और आचार की विनाशक समझी जावे और जिनके हाथ से जलपान ग्रहण करलेना मानोस्व-

जाति पच से कालापानी ही लेलेना है वे लोग मृत्यु हुवे पश्चात् माता पिता की अपेचा इतने पवित्र और शुद्धाचारयुक्त बन जाते हैं कि जो कबरोंमें ही धरे धरे उपासना और आराधना कराने लगते हैं अतुल धन व्यय कर २ के महा दुःख उठा कर अनेक भारत वासी कुटम्ब सहित उन मुर्दों की प्रतिवर्ष यात्रा करते हैं और विविध भांति उनकी कबरोंपर नाक रगड़ते हैं लाखों प्रकार की मनोकामना पूरी करनेको भी इनसे प्रार्थना करते हैं कि जो घरके तेतीस करोड़ देवता पूर्ण करने में असमर्थ है अपने घरमें जिन वस्तुओंसे ग्लानि रखते हैं कबरों और दर्गा होमें उनही को छूना और देखना स्वजन्म सफल करने के तुल्य मानते हैं और कर्म्म पूर्वक अभच्य और अत्याचार समझ रक्खा था वहां जाकर वही भच्य और आचार होजाता है हम अपनी आखोंकी देखी सुनातेहैं कि सहारन पुरके जिले में रूड़कीके निकट एक पिरान कलियर की दर्गाह है कि जहां प्रतिवर्ष एक बड़ा मेला एकत्र हुवा करता है परन्तु गोवध उस स्थान में इतना होता है कि पिरान कलियर के बदले यदि हम उस का नाम गोप्राण बिनाशक रखदेवेंतो कुछ अनुचित न होवेगा फिर वहीं हमारे देशी बान्धव ब्राह्मण पर्य्यन्त पीर साहबकी आराधना और प्रार्थना करके धनसम्पत्ति और पुत्रोत्पत्ति मागते हैं इसही प्रकार अजमेरके ख्वाजे साहिब की दर्गाहके विषय में भी जान लेना चाहिये कि जहा सौमन पुलावकी देग हमारे जाति बान्धव जाजाकर पकवाते हैं बुद्धिशील जनोंके विचारसे योग्यतो यह बात है कि इनके तेतीस क्रोड़मे से एक भी देवता का वह लोग नाम नहीं लेते कि जिनके कबरोंमें पड़े हुए अपना इष्ट मान रहे हैं उलटा उनकी बन पड़ेतो इनकी जड़तक निकाल फेकें हमें ऐसी प्रतीति होतीहै कि पुस्तक

कार महाशय हमारे इस कहनेका यही उत्तर देवेंगे कि पूर्वोक्त सम्पूर्ण व्यवहार भारतवासियोंमें उनकी मूर्खता और अज्ञान से आपही प्रचलित हो गये किसी के उपदेश और शिक्षासे नहीं तो हम निवेदन करते हैं कि जिस दशामें ऋषि मुनि लोगों के रचे जड़ मूर्ति पूजादि विधायक ग्रन्थ आपके कथनानुसार देशमें विद्यमान हैं और उनकी सन्तान नित्य प्रति भारतवासियोंको कथा और शिक्षादि द्वारा उनके अभिप्राय सुनाते रहते हैं इत्यादि यत्न होने परभी वह तेंतीस क्रोड़के पूजन से सन्तोषित न हुवे और उनको स्वान्तरिक कामनाओंके पूरा करनेमें असमर्थ समझ कर नवीन प्रकारके अन्य जातीय इष्टदेव बना बैठे तो भला द्वीप द्वीपान्तरके उस समयके असभ्य और अशिक्षित लोगोंमें भान्ति २ की जड़ वस्तुओंका पूजा विधान मनुष्य वध और अन्य वलिदानादि निष्ठुर और कुत्सित व्यवहारोंका प्रचलित होना, आप धर्म्मशील विद्यासागर पूर्ण योगी ऋषिगणोंके उपदेशका फल वताते हैं ? यदि विद्वानों की सहायता लेकर विचारते तो तुरन्त प्रत्यक्ष हो जाता कि न तो भारत देशमें और न भूगोलके अन्य देश देशान्तरोंमें जड़ द्रव्यों के पूजन और मनुष्य वध आदि महा असभ्य व्यवहारोंके कारण ऋषि मुनि थे और न उन्होंने इस प्रकारके ग्रन्थ निर्म्माण किये ऐसे २ व्यवहार फैलने का हेतु तो अविद्या और अज्ञानही है दूसरा कुछ नहीं इतिहास को यथा विधि पण्डित जी अवलोकन करते तो तुरन्त जान लेते कि भूगोलके जिस २ भागमें विद्या और सभ्यता का प्रकाश नहीं है वहाँ वहांके मनुष्य परमेश्वरके यथार्थ ज्ञानके अभावमें कि जो विना विद्या प्राप्त किये सर्वथा असम्भव है अपनी अन्धकार युक्त बुद्धिके कारण पाषाण वृक्ष पशु पक्षी तत्वादिक अनेक पदार्थों को अपना पूजनीय

देव और ईश्वर मानते हैं यदि कोई विद्यादि विज्ञान सम्पन्न मनुष्य उनमें प्राप्त होकर विद्यावलसे कोई नवीन चरित्र उनको कर दिखावे जिसका भेद समझने और जानने में वे असमर्थ होवें तो वे दीन लोग ऐसे मनुष्यको साक्षात् ईश्वर वा वा ईश्वर का अवतार मानने में तुरन्त उद्यत हो जावेंगे एक इतिहास में वर्णन हो रहा है कि पञ्जाव देशके कितने ही हिन्दुओंने मृत मिष्टर जान निकोलसन साहिव वहादुर का पूजन करना इस कारण आरम्भ कर दिया था कि उन लोगों ने प्रशंसित साहिव को विद्यादि गुणयुक्त होनेसे परम पुरुषार्थ शूरवीर और बुद्धि शील पाया कि जैसा उनके देखने और सुन नेमें पूर्व नहीं आया था और उनके चरित्रों को पारमेश्वरी समझ निकल सैन नाम रख कर उपासना करने लगी प्रशंसित साहबने बहुत यत्न किया कि वे लोग ऐसा न करें। परन्तु कौन सुनता था वस इसही भान्ति जिस जिस जाति में जितना २ विद्याका प्रकाश होता गया वहां उतना२ ही जड़ मूर्ति पूजा और अयुक्त भक्ति घटती चली परन्तु यह भले प्रकार जान लेना चाहिये कि जितने काल पर्य्यन्त जिस जाति में परमेश्वर के सत्य ज्ञानके अभाव में अनेक सृष्टिके पदार्थ पूजनीय रहे उतने समय तक उस जातिकी उन्नति किञ्चित-मात्र न हुई और न उसमें सभ्यता प्रवृत्त होसकी परन्तु जहां ईश्वरका यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होनेसे मूर्तिपूजादि कर्म्म छुट गये वही जाति पूर्ण सभ्य विद्यादि श्रेष्ठ गुण और सांसारिक विभव और ऐश्वर्य्य संयुक्त होती जातीहै और जिस जिस देश में यह व्यवहार प्रवृत्त है वही देश प्रति दिन अधोगति को प्राप्त होता है आर्य्यावर्त देशमें जब सत्य विद्या और सत्य वेदोक्त धर्म्मका सूर्य यथावत प्रकाशमान था तब सुद्युम्न भूरी-

द्युम्न कुवलयाश्व यौवनाश्व सगर दिलीप हरिश्चन्द्र अम्बरीष श्रीरामचन्द्रादि सार्वभौम और और चक्रवर्ती राज्य करते थे और संपूर्ण सत्यविद्या और कलाकौशल में यथा विधि सम्पन्न थे परन्तु महाभारत युद्धके पश्चात् जबसे इस देश से विद्याध्ययनादि श्रेष्टाचार नष्ट भ्रष्ट होनेसे पाषाणादि जड़ मूर्ति पूजन प्रचलित हुवा तब से महादुर्दशाको पहुंचता जा रहा है पुस्तककार जी यह विपरीत प्रलाप आप अपने घर में ही रखिये कि जो आप थेल्स आइओनिक सोक्रेटीस आदि महा वैज्ञानिक पुरुषों को कणाद जैमिनि व्यासादि महर्षियों के समान एक ही प्रकारके विद्वान् होने मात्र से ही मूर्ति पूजन का हेतु सिद्ध करते हैं हम कहते हैं कि हमारा और आपका विवाद इतने ही पर समाप्त है जो आप पूर्वोक्त ऋषियों के द्वारा प्रणीत षड् दर्शनों में भी मूर्ति पूजा का लेश निकाल देवें नहीं तो हाय हाय करते रहो कौन सुनता है यह आपका ही कहना है कि श्रीस्वामी शंकराचार्य्य ने मूर्तिमन्दिर स्थापन किये नहीं तो शंकर दिग्विजय खोल कर देखिये ४६ मिथ्यामतोंको खण्डन करके प्रशंसित स्वामी जीने सत्य वेदोक्त मतको स्थापन किया था हाथ कंकण के लिये आरसी नहीं चाहती यदि स्वामी शंकराचार्य्य मूर्ति स्थापन करनेवाले होतेतो जहां तहां अनेक स्थानोमें भूमि खोदने से जो खण्डित मूर्तियां आज पर्य्यन्त उपलब्ध होती हैं वह कहां से आई विश्वास न होवे जिओलोजिकिल ओपरेशन् की रिपोर्ट पढ़ लीजिये बस यही सिद्ध है कि वेदादि सत्यशास्त्र विरुद्ध होनेसे जड़ पाषाणादि मूर्ति स्वामी शंकराचार्य्य जी हीने नष्ट कराकर उनके स्थान में वैदिक शाला नियत कि थी।

पु० का० पृ० ४३ पं ८—पृ० ५० पं २२ पर्य्यन्त।

स० उपरोक्त लेख मे पुस्तक कारने श्राद्ध कर्म्म को मृत पितरों के अर्थ प्रमाणिक करने का उद्योग किया सो भी हमारी और उनकी नही वनती कहना तो हमारा उनको बहुत ही वुरा जान पड़ता होगा परन्तु क्या करें उनकी युक्तियों की बाल प्रलपादि बिशेषणोंके अतिरिक्त और प्रकार के वाक्यों द्वारा प्रशंसाही नही कर सकते भला स्वप्न के उदाहरण की सहायता लेकर वह मृत पितरों को खाद्यादि पदार्थों का पहुंचना सिद्ध करते हैं इसे देख कौन बुद्धिमान् उनकी तर्क शक्ति पर उपहास न करेगा॥ आप सोये हुये की कहते हैं हम ने बहुत से जाग्रत् में भी देखे सुने हैं कि जो वैठे २ और चलते २ भूगोल मात्र के उत्तम से उत्तम पदार्थों को भोग कर मनके संकल्प विकल्प द्वारा चक्रवर्त्ति राज्य पर्यन्त को एक क्षणमें प्राप्त कर डालें वह संसार में कौन सी देखी और सुनी वस्तु है कि जो मनुष्य संकल्प और विकल्प द्वारा मन में धारण तथा प्राप्त न कर लेता हो बिचार देखिये कि जिस समय मनुष्य को किसी परम प्रिय सम्बन्धि तथा इष्ट मित्र के स्मरण हो आने पर उसके रूप और आकृति के संस्कार यथावत् रीति से चित्त में उत्पन्न हो जाते हैं चाहे वह क्रोड़ों कोश दूरान्तर में निवास क्यों न करता हो परन्तु ध्यान करनेवालेको एक आन की आनमें तुरन्त ही साक्षात् उस का दर्शन हो जाता है यदि स्नेहवश होने से वह अत्यन्त मग्न हो जावे तो इतनी भी सुधि नही रहती कि जिस से वह जान सके कि यह चित्तकी कल्पना मात्र है वा बास्तविक एक सत्य बर्त्ताव है बस, यही घटना स्वप्नके बिषयमें समझ लेनी चाहिये अर्थात् स्वप्न नाम है यथावत् निद्रा भोग करने का परन्तु जाग्रत् काल में जो २ व्यवहार क्रिया

देखने सुनने और बर्त्तने में आती हैं स्वप्नावस्था में नेत्र मूंदकर चित्तके चंचल स्वभाव द्वारा उनकी कल्पना करने को स्वप्नबोलते हैं कि जिस स्वप्नवत् कल्पना को जिस विज्ञ पुरुष से पूंछो गे मिथ्या और भ्रम मूलक ही बतावे गा० अतः जब यह आपका स्वप्न विषयक उदाहरण ही मिथ्या है तो इसके द्वारा कल्पित लिंग शरीरका श्राद्धादि में अर्पण किये पदार्थों का भोगना भी आप के ही मुख से मिथ्या सिद्ध होगया॥

आगे मृतकोंके श्राद्ध कर्म्म सिद्ध करनेके अर्थ जो आपने प्रमाण प्रकाशित किये हैं और उनको मनुस्मृति के वाक्य करके लिखा है सो उक्त विषयमें हमारा उत्तर यह है कि अपनी मन समझौती तथा इष्ट पूर्त्तिके लिये आप मनु नही उनको ईश्वरके वाक्य कहिये और मानिये भी परन्तु वास्तविक इस प्रकारके बचनोंको मनु सरीखे आप्तोंका स्मरण और कथन समझना महा भ्रान्ति है तथा उनको वैसा सिद्ध करना सर्वथा एक असम्भव कार्य्य है हम बारम्बार कहते चले आते हैं कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से असिद्ध विषय तथा सृष्टिक्रम प्रतिकूल और युक्ति शून्य व्यवहार तीन कालमें आप्त सम्मत और ऋषि वाक्य नहीं हो सकते यदि कहो कि यह लेखतो मनुस्मृति ग्रन्थमें विद्यमान है और उनको मिथ्या समझना वा उन पर तर्क बितर्क करना केवल हठ और अनर्थ ही है तो आप यह ध्यान कीजिये कि लेखनी और मसी प्रत्येक मनुष्यको लब्ध है और जिसके चित्तमें जो कुछ आवे वह स्वतः जिस आर्ष ग्रन्थमें चाहे प्रक्षेपन करके उक्त लेखको आर्ष कह सकता है परन्तु परमेश्वर की दी हुई बुद्धि और दोषादोष ज्ञान शक्ति तो प्रत्येक व्यक्तिगणके अन्तःकरण में विद्यमान है पुनः उससे काम नले कर सत्यासत्य निर्णय न करना मनुष्यपन क्या कहला सकताहै

ज्ञाता पुरुषोंके विचारने योग्यहै कि जिस दशामें एक साधारण और सामान्य ज्ञान युक्त मनुष्य भी किसी प्रकारका कथन करते समय वा कोई विषय लेख बद्ध करती बार इस भूलसे अत्यन्त सावधान रहता है कि मेरे मुखसे किसी कारण कोई ऐसा प्रलाप न हो जावे कि जो मेरे पूर्व कहे हुवे किसी वाक्यको मिथ्या कर देवे वा लेखमें कोई ऐसा शब्द न आन पड़े कि जो परस्पर विरोध उत्पन्न कर देवे तो भला पक्षपात रहित और सत्यार्थ विवेचक जनोंका आत्मा यह बात ग्रहण करेगा कि मन्वादि महर्षि जिनको त्रिकालज्ञ भी कह देवें तो कुछ अनर्थ नहीं इस प्रकारका असंबद्ध पलाप करते कि अपने परम पुनीत ग्रन्थके एक भागमें इस प्रकारके वाक्य जो वेदार्थानुकूल और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध हों प्रकाश करके पुनरपि उसही ग्रन्थके दूसरे भागमें वेदविरुद्ध और न्याय युक्ति शून्य वचनोंको स्थान देते ? जब उन महात्माओंसे यह होना असम्भव है तो फिर मनुस्मृतिमें पूर्वापर और परस्पर वाक्यविरोध अनेक स्थानों में क्यों प्रत्यक्ष है यथा—

यथा काष्ठमयो हस्ती यथाचर्ममयो मृगः ।
यश्चविप्रोऽनधीयानस्त्रयस्तेनाम बिभ्रति ॥
अ० २ श्लो० १५७ ॥

यथाषण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गविचाफला ।
यथाचाज्ञेऽफलंदानं तथाविप्रोऽनृचोऽफलः ॥
अ० २ श्लो० १५८ ॥

ब्राह्मणास्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
यो नधीत्य द्विजोवेदमन्यत्रकुरुते श्रमम् ।

स जीवन्नेव शूद्रत्व माशुगच्छति सान्वयः ॥

अ० २ श्लो० १५८ ॥

इनका अभिप्राय यह है कि काठका हस्ती, चर्म्मका मृग, और बिना पढ़ा ब्राह्मण हैं यथार्थ में नही हैं। जैसे नपुंसक स्त्रियोंमें गाय गायोंमें निष्फल अर्थात् नाम मात्रही ब्राह्मण है यथार्थमें नहीं। बिना पढ़ा ब्राह्मण फूंसकी आगके सदृश शीघ्रही नष्ट हो जाता है। जो ब्राह्मण वेदाध्ययन त्यागकर अन्य कार्यमें परिश्रम करता है वह जीताही अर्थात् इसही जन्ममें शूद्रत्वको प्राप्त होता है। देखिये इस प्रकार वेदानुकूल सत्य प्रमाण युक्त वाक्योंको मनु कृत कहनेमें कौन दुराग्रही शंका करेगा। परन्तु नवें अध्यायके ३१७ वां श्लोक इनके विरुद्ध में लीजिये यथा—

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत्।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥

अर्थात् ब्राह्मण पठित हो वा निरक्षर मूर्ख हो परम देवता है। अब न्याय युक्त पक्षपात रहित धार्मिक जन विचारें कि यह लेख कार्य साधक पेट पालक स्वार्थ युक्त मनुष्यके अतिरिक्त किसी प्रकार आप्त प्रणीत होसकताहै? तथा महाविद्या सम्पन्न महर्षि मनुजी अपने पूर्व कथित स्मरण को स्वतःही खण्डन करके मनुष्य विशेषके उपकारार्थ कथन करने के दोष भागी ठहर सकते हैं; इस प्रकारके परस्पर विरोध पूर्वोक्त ग्रन्थमें बहुत ही ठिकानों में हैं परन्तु न्याययुक्त धीमान् जनोंके विचारार्थ एक वा दो ही उदाहरण बहुत हैं अधिक लेख द्वारा ग्रन्थको वृथा बिस्तार देना है अवशिष्ट और सत्यग्राही पुरुषोंसे प्रार्थना है कि वह नीचे लिखे वाक्यों की परस्पर तुलना करके सत्यासत्यका निर्णय करें। यथा मनु० अ० ४ श्लो० २३९।२४०।२४१

नामुत्र हि सहायार्थं पितामाता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारन्नज्ञातिधर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २३९

एकः प्रजायते जन्तु रेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २४०

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठ समक्षितौ ।
विमुखाबान्धवान्ति धर्म्मस्तमनुगच्छति ॥ २४१

अर्थात् न माता न पिता न पुत्र न भार्य्या न इष्ट न मित्र कोई भी इनमें से परलोक का सहायक नहीं हो सकता केवल एक धर्म्म ही सहायता प्रदान कर सकता हैं। यह प्राणी अकेला ही इस संसार में आता है अकेला ही चला जाता है अकेला ही पुण्य को भोगता है और अकेला ही पाप के फल को प्राप्त करता है निदान इस लोक में सब सहायक बन सकते परन्तु परलोक हुवे पश्चात् किसी के किये कुछ नहीं होता। काष्ट और ढेलेके समान मृत शरीर को पृथिवी में त्यागकर बान्धव लोग तो यही उसकी ओर से मुख फेर लेते है परन्तु धर्म उसके पीछे ही पीछे हो लेता है इत्यादि वाक्यों का सुनिश्चितरूप से एक सामान्य ज्ञान वाला मनुष्य भी आशय जान सकता है कि हम अपने माता पिता पुत्र बान्धवादि इष्ट मित्रों के सुख और दुःख के सहायक उनके जीवनकाल पर्य्यन्त ही हो सकते हैं पश्चात् नहीं इस में भी यही समझना चाहिये कि हम से वह सेवा शुश्रुषादि भोग युक्त पदार्थों तथा अन्य सुख के साधनों को उतनाही प्राप्तकर सकते है कि जितना वह अपने शुभाशुभ कर्मानुकूल अथवा पूर्व संचित प्रारब्धके आधीन होकर पाने के अधिकारी है यद्यपि यह हमारा

धर्म है कि यावच्छक्य सब प्रकार उनके सहायक होकर उनके क्लेश निवारणार्थ सदैव यत्न किया करें तथापि यही देखने में आता है कि इस संसार में अनेक धन सम्पत्यादि सम्पन्न लोग अपने माता पिता पुत्र बान्धवादिकों को अपने ही समान सुख युक्त और ऐश्वर्य्यवान् बनाने के अर्थ सदा अनेक विधि यत्न किया करते हैं परन्तु दैव गति से कोई विघ्न इस प्रकार का उदय हो जाता है कि वे दीन आतुर हो कर स्थगित हो जाते हैं और उक्त सम्बन्धि दरिद्रों की भांति दुःख भोगते हुवे अपना जीवन व्यतीत करते हैं बहुत मनुष्य राज नियम तोड़ने के कारण अपराधी बनते हैं और दण्ड प्र-दान हुवे पश्चात् उनको कारा गृहमें परवश रहना पड़ता है कि जहां उनको अनेक प्रकारके दुःख प्राप्त होतेहैं परन्तु उनके माता पितादि बान्धव लोग उनको किसी प्रकार की भी सहा-यता पहुंचाने का सामर्थ नहीं रखते यदि कोई किसी प्रकार की चेष्टा करके कारा गृह में उनको सुख पहुचाया चाहें और दुःख घटाया चाहें तो प्रकट होनेपर उल्टा वह भी अप-राधी होकर दण्ड पाता है इस प्रकार बहुत माता पिता अ-पनी सन्तानों को विद्या तथा धनादि के बल से अर्थात् उनको विद्वान् बनाकर वा धनव्यय कर व्यापारादि क्रियाओं के सि-खाने से सुख युक्त करने के उपाय में जन्म भर लगे रहते हैं परन्तु देखने में आता ही है कि उन सन्तानों में कितने ही शिथिल बुद्धि होने और व्यवहार में कुशल न होने के हेतु अथवा न्यून परिश्रम अचेतपन के कारण मूर्ख जटिल और दरिद्री ही रहजाते हैं और दीन माता पिता का सम्पूर्ण उ-द्योग निष्फल चला जाता है चतुर पुरूषों की कहन है कि प्रत्यक्ष में दूसरे प्रमाण की कुछ आवश्यकता नहीं हुवा करती

इसे ही ध्यान देकर देखली जिये कि हमारा तात्पर्य्य इतने दीर्घ लेख से क्या निकलता है अर्थात् जब इस ही लोक में रात्रि दिवस हमें आभास होता रहता है कि माता पिता पुत्र इष्ट मित्र बन्धु अपनी ही अपनी क्रियाओं के फल भोक्ता हैं दूसरे के नही तो मनु महाराज के पूर्वोक्त स्मरण जो प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हो रहे हैं किसकी खोपड़ी है जो विरुद्ध प्रलाप करके उन को असत्य ठहरावे अजी बस आप अपने प्रत्यक्ष प्रमाण को उठाके घरमें धरो वा शिरपर टांग के नाचते फिरो कौन पूंछता है आंख खोलकर देखलो उस ही मनुस्मृति के तीसरे अध्याय के १२३ वें श्लोक से लेकर चतुर्थाध्याय के आरम्भ तक अनेक श्लोक हैं जिन से ऊपर के वाक्यों का सर्वथा निषेध होता है और जिन में के कितने ही बालादत्त जी ने भी पृष्ट ४६ पंक्ति ५ से पृष्ट ५० पं० १२ तक प्रमाणार्थ लिख छोड़े हैं मुख संभाल कर भाषण करो परमेश्वर को सर्व गत समझ मनु सरीखे आप्तो में ऐसा वज्र अर्थात् परस्पर बचन विरोध (हलफ दरोगी) का दोष अर्पण मतकरो क्योंकि ऐसे महात्माओं में मिथ्या कलङ्क लगाना सामान्य पाप नही हैं प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध वेदार्थ के अनुकूल और प्राणीमात्र के ऐश्वर्य्य वर्द्धक होने से वह पूर्व कथित वाक्य ही मनुक्त ठहरते है इतर तृतीयाध्ययके अन्तिम लेख वेदादि सत्य शास्त्रों के विरुद्ध तथा न्याययुक्ति शून्य और भ्रमात्मक होनेसे प्रमाणिक माने जानेके बदले किसी पेट के पीछे धर्म्म बेचके खानेवाले की बनावट प्रतीत होते हैं जिनको मिथ्या सिद्ध करना किञ्चित् भी कठिन नही है। हम बालादत्त जी से पूंछते हैं कि उन्होंने यह कहां से सिद्ध किया कि तीन सौ ३००० वर्ष पर्य्यन्त पितर लोग पुत्रपौत्र और प्रपौत्र के प्रदान किये पिण्ड

और श्राद्ध मे अर्पित भोज्यादि पदार्थ पाने के अर्थ दूसरे स्थान में जन्म लेने से अटके रहते हैं और तावत्काल उक्त पिण्डादि पदार्थों को भोगा करते हैं यदि वह कहें कि सम्पूर्ण मनुष्य मृत्यु हुवे पश्चात् श्राद्ध भोगार्थ स्वर्ग लोक को प्राप्त होते हैं तो भला क्या वह पापी जन भी उन ही में मिल जायंगे कि जिनके कर्म्मों का फल परलोक में नरक भोग होना था जो कहो हां तो यह होने से परमेश्वरका महा अन्याय सिद्ध होता है क्योंकि पापी और पुण्यात्मा तीन सौ वर्ष के लिये तो एक ही समान चैन उड़ावे पीछे जो होगी सो होती रहे गी यदि उत्तर दो कि नहीं धार्म्मिक लोग स्वर्ग में निवास करते हुवे श्राद्ध भोग करेंगे और नरक गामीयों को नरक में ही वह भाग प्राप्त होगा तब भी फिर अनर्थ ही रहा क्योंकि नरक नाम है विशेष दुःखका अर्थात् बुरे कर्मों तथा पापों का जो फल है उसे नरक कहते हैं परन्तु जब वहां श्राद्ध में दिये हुवे मालपुवे तस्से मोदक तो खाने को मिलें सुन्दर वस्त्र और अलंकार धारण करने को उत्तम शय्या लेट लगाने को तो नरक कहां वह तो स्वर्गका भी दादा होगा इससे क्या आया कि उनके कर्म्मका यथार्थ फल जो दुःख है वह उनकी सन्तान ने इस लोक में बैठे हुवे मनु जी के विरुद्ध श्राद्ध करके हरण कर लिया अब रहे वह जो स्वर्ग में पहुंचे सो उनही के कर्म्मों का फल प्रधान रहा अर्थात् स्वर्गनाम है विशेष सुखभोगका सो श्रेष्ठ कर्म्मानुसार ऐश्वर्य्य युक्त होना स्वर्ग प्राप्ति है ऐश्वर्यवान्को वह कौनसा पदार्थ अलभ्य हो और श्राद्ध करनेवाला प्राप्त करके उसे पहुंचावे इस व्यवस्थासेभी मृतकोंको श्राद्धसे कुछ लाभ न हुवा आगे यह विचारिये कि मनुजी छटे अध्यायके ९२और९३ वें श्लोकमें चारों आश्रमोंके लिये दशलक्षणयुक्त धर्मके सेवनका विधान करतेहैं यथा:

धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् । ६१

दशलक्षणानि धर्म्मस्य ये विप्राः समधीयते ।
अधीत्यचानुवर्त्तन्तेते यान्ति परमांगतिम् ॥६२

धृति (अर्थात् सन्तोष) क्षमा अर्थात् किसी से अपकार को पाकर उसपर अपकार न करना) दम (अर्थात् विकार करनेवाले बिषय को पाकर मन में बिकार न होना) चोरीका त्याग, पवित्रता, बिषयों से इन्द्रियों का रोकना, शास्त्र आदि का तत्वज्ञान, आत्म ज्ञान, सत्य, क्रोध का हेतु रहते संते भी क्रोध न करना ६१ ये दश धर्मके लक्षण हैं जो इन्हो को जान कर और सेवन करता है वह परमगति को पाता है ६२ तो इस का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मनुष्यगण पूर्वोक्त प्रकार से धर्माचरण में प्रवृत्त होकर अनन्त स्वर्ग और परमगति जो मोक्ष है उसे प्राप्त करें अनन्त स्वर्ग में जो परमानन्द लब्ध होता है सो कठोपनिषद् में इस प्रकार वर्णन किया है ।

स्वर्गेलोकेनभयं किञ्चनास्तिनतत्वं न
जरया विभेति ।
उभेतिर्त्वाषनाया पिपासे लोकातिगो
मोदते स्वर्गलोके ॥ १ ॥

अर्थात् स्वर्ग लोक में कुछ भी भय नही है (हे मृत्यु,) तुम वहां नही हो और न बुढ़ापेका वहां भय है भूखप्यास दोनों वहां नही हैं शोक को अतिक्रम करके आत्मा वहां आनन्द भोग करता है । जब कि स्पष्ट रूपसे प्रकाश कर रक्खा है

कि परमगति को प्राप्त हुवे जीवों को भूख प्यास आदि जो शरीर से सम्बन्ध रखते हैं नही व्यापते तो विचारशील जन कदापि इस बात को स्वीकार न करेंगे कि महा धुरन्धर मनु जी का अभिप्राय मृत पितरों के श्राद्ध कराने से है जब कि स्वतः वह यह व्यवस्था स्थापन करचुके कि प्रत्येक चतुराश्रमी दश लक्षणवाला जो धर्म्म है उसे सेवन करके मोक्षादि सुखों को प्राप्त करें जहां भूख प्यास का नाम नही है तो इस के विरुद्ध वहां भोज्यादि पदार्थ पिण्ड प्रदान द्वारा पहुंचाने का विधान किसके अर्थ करते हैं यदि उक्त आप्त का ऐसा ही अभिप्राय होता तो ब्राह्मण और दश लक्षण युक्त धर्मके पालन करने वालेके अर्थ पिण्ड प्रदान और श्राद्धादि कर्म्मोंका निषेध अवश्य मेव करते जबकि मोक्षादि अनन्त स्वर्ग प्राप्ति होने पर भूख प्यास आदि के अभाव में उक्त व्यक्तिगणों को मृत्यु हुवे पश्चात् भोज्यादि पदार्थ पहुंचना व्यर्थ है क्योंकि ब्राह्मण के लिये संन्यास धारण करना कहा है और पूर्वोक्त दश लक्षण युक्त जो धर्म है उसको यथावत् पालने से ही संन्यास पूर्ण होता है अतएव संन्यासी मोक्षका अधिकारी हुवा और मोक्ष में उसे अपने पुत्रों से पिण्डादि ग्रहण की क्या आवश्यकता रही तथा संन्यासी के अर्थ कोई कर्म्म भी कर्त्तव्य नही जैसा कि व्यवहार अभी प्रचलित है और इतर आश्रमी लोग जो उक्त धर्मका सेवन करें वह भी मोक्ष होनेसे पिण्डादि पानेकी आवश्यकता नही रखते इस कारण इन दोनों के विषय मे मृतक श्राद्धका निषेध न होना और दश लक्षण युक्त धर्म्माचरण में प्रवृत्त हो कर अनन्त स्वर्गादिकों की प्राप्ति करने का विधान करना परस्पर विरोध युक्त हैं यदि आप कहें कि पूर्वोक्त आश्रमीयों में से सबहीका मुमुक्षु होना तो किसी प्रकार सम्भव नही फिर

श्राद्धका निषेध क्यों होता हम स्वीकार करते हैं कि सब ही लोग धार्म्मिक नही हो सकते परन्तु यह भी तो नही कि संन्यासी तथा मोक्षका अधिकारी भी कोई नहो इस लिये मनु भगवान् सरीखे तत्वार्थ ज्ञानी इस प्रकार को व्यर्थ और निरर्थक मर्यादाओं को स्थापन न करते अतएव मृत कों का श्राद्धादि और्ध्व दैहिक कर्म आप्त सम्मत नही है इन दोनो की अवश्यमेव छूट करते परन्तु जब यह बात नही है और लेखों में पूर्वापर विरोध प्रत्यक्ष है तो मृतकों का श्राद्ध होना महर्षि मनुके अभिप्रायानुकूल नही है। आगे और भी मनु वाक्य आपके जानने और विचारने के अर्थ प्रकाश करते हैं कि जिनका श्राद्ध विषयक दूसरे वचनों से सर्वथा विरोध प्रतिपन्न हो रहा है यथा:—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्। १
समुत्पत्तिञ्च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्यनिवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्। २
अनुमन्ताविशसिता निहन्ताक्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ताचोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः। ३

उक्त मनु वाक्यों का यह अर्थ है कि प्राणियों की हिंसा किये बिना मांस प्राप्त नहीं होता और प्राणीका वध करना सुखका हेतु नही इस कारण मांस भक्षण सर्वथा वर्जित है। मांसकी उत्पत्ति अर्थात् जीव बधरूपी महाक्लेश को देखकर मांस भक्षणसे निवृत्त ही रहना चाहिये। अनुमन्ता अर्थात् आज्ञा देनेवाला विशसिता, मांसको काटनेवाला निहन्ता, बध

करनेवाला, मोल लेनेवाला, संस्कर्त्ता पकानेवाला, उपहर्त्ता लानेवाला, और खानेवाला ये ८ आठों मनुष्य मांस भक्षणके दोषी होते हैं इस कारण जीव हिंसाका सर्वविधि निषेध है देख लीजिये पुस्तककार महाशय और हे पाठक सुजनों! आप अपने आत्माओं में न्याय पूर्वक विचार करें कि मांस भक्षण निषेध करनेमें मनु भगवान् ने कितना यत्न किया है कि मांस लानेकी सम्मति (राय) तक देंना भी पाप ठहराया है फिर आप इन वचनोंके विरुद्ध अब आगे श्राद्ध प्रकरणके लेखों पर दृष्टि कीजिये।

पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्य्यंविदुर्बुधाः।
तच्चामिषेणकर्तव्यं प्रशस्तेन समन्ततः। अ० ३ श्लो १२३

अर्थात् प्रतिमास पितरोंका श्राद्ध करना पण्डितोंने अन्वाहार्य्य (कर्त्तव्य यानि जरूरी फर्ज) कहा है कि जो अत्युत्तम मांससे करना चाहिये।

भक्ष्यं भोज्यञ्च विविधं मूलानिच फलानिच।
हृद्यादिचैव मांसानि पानानि सुरभीणि च॥

अर्थात् श्राद्धमें निमन्त्रण किये हुवे ब्राह्मणोंके सम्मुख नाना प्रकारके फल मूलादि भक्ष पदार्थ तथा सुन्दर हृदयके प्रिय मांस और सुगन्धि युक्त पान (मदिरासे अभिप्राय प्रतिभात होता है) भोजनार्थ स्थापन करे, हे पक्षपात रहित पाठक गण देख लीजिये कहां तो मांस भक्षणका वह दृढ़ता पूर्वक निषेध और कहां यहां श्राद्ध मे आकर झट रोजा खोल दिया, अभी और लीजिये।

दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः।
शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैवतु। अ० ३ श्लो २७०

कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु ।
आनन्त्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानिच सर्वशः । अ० ३, २७२

अर्थात् सूकर और भैंसेके मांस देनेसे दश मासतक पितरों की तृप्ति होती है खरगोश और कछुवेके मांससे ग्यारह मास तक प्रसन्न रहते हैं कालशाक, महाशल्क, (एक प्रकारकी मछली) और गैंडा और लाल बकरे के मांस देनेसे पितर अनन्तकाल पर्यन्त तृप्त होजाते हैं इन्हें छोड़ उस तृतीयाध्याय हीके २६७, २६८, २६९ और २७१ वें श्लोकों में मछली, भेड़ी, पक्षी, हरिणादिके मांस से भी पितरों की विशेष तृप्ति कही है और श्वेतवर्णका जो ऐसा बकरा हो कि नदीमें जल पीते हुवे जिसके कान जलको छूदेवें उसके मांससे १२ वर्ष तक पितर प्रसन्न रहते हैं। अब हमारा प्रश्न यह है कि पूर्व वाक्योंमें जो मनुजीने सत्य विद्या और वेदानुकूल मनुष्य हिंसक ठहराये हैं तो उनके विरुद्ध क्या श्राद्धमें मांस बिना हिंसा किये अर्थात् बिना जीव बध कियेही प्राप्त हो जाता होगा वा वह पशु पक्षी अपना मांस स्वतःही प्रसन्नता से दे डालते होंगे वा उनको कोई प्रकार आप मांस देते वा दूसरे के काटने से दुःख वा पीड़ा नहीं व्यापती होगी, हाय! हाय! क्यों नही हमारे तो यह अव्यक्तवाणी दीन पशु पक्षी आदिका प्राण हतनेका विषय सुनकरही रोमांच खड़े होतेहैं और हृदय कम्पायमान होता है उनकी वेदना और यातना वही जानते होंगे या वह विचारशीललोग कुछ कुछ समझते होंगे जो अपने शरीरमें सुई चुभनेकी पीड़ाको उक्त प्राणियोंके गले कटनेके त्रासके सङ्ग तोलते होंगे। कितनेही लोग यह कहा करते हैं कि मांस

सहित श्राद्ध करना सत्ययुगका धर्म्म है कलियुगमें यह वर्जित है परन्तु मनुस्मृतिमें ऐसे लेखका एक अक्षर भी कहीं नहीं और फिर सत्ययुगके समयमें जब आपके निश्चयानुसार कलियुग की अपेक्षा तीन गुण अधिक धर्म्म होता था तो उस कालमें हिंसा धर्म्म और अहिंसा अधर्म्म माना जाता होगा केवल यही नहीं बरन जितनी मर्यादा आजकल प्रचलित हैं और जिन्हे आप धर्म्म मानते है वह सत्ययुगमें अधर्म्म और जिनको आप अधर्म्म मानते हैं वह धर्म्म युक्त मानी जाती होंगी क्योंकि आजकलके जिस ज्ञानशील जनसे आप पूछेंगे कि हिंसा करनी कैसी वह तुरन्त यही कहैगा कि महा अधर्म्मतो फिर आप उसे सत्ययुग का धर्म्म बताते हैं इसके उपरान्त यदि आप यही हठ रखते है कि नहीं श्राद्धादिमें मांस अर्पण करना तो सत्ययुगही में कर्त्तव्य था अब किसी प्रकार नहीं तो कृपा करके यह क्यों नहीं कहते कि यह समग्र श्राद्ध विधि ही सत्ययुगके अर्थ थी कलियुगमें इसका निषेध है। हाय हाय ऐसा कहने से तो खड़ेही लुट जावेंगे बस इतनाही रहने दो कि मांसहीका निषेध हुआ नही तो क्या तुम्हारे कहने से तस्मै के सड़प्पे और लड्डु के पीछे लड्डु धकेलना खो बैठें दूसरा उत्तर विपक्षी जन यह दिया करते हैं कि देवता और पितरों के अर्थ जीव हिंसा करना पाप नहीं, भला मित्र इसका प्रमाण बस प्रमाण इसका जिह्वा और डाढ़का स्वाद, और क्या और चाह वहां भी देखलो जहां श्राद्धादि में जीव मारने का विधान है वहां का कहाती वही जिह्वाके स्वाद में मिल गया हां निस्सन्देह जहां जीव बधका प्रसंग है जैसा कि पूर्व दिखाया गया वहीं पितरों और देवों के अर्थ आठों प्रमाणों से छूट हो जाती तो कुछ ध्यान भी दिया जाता परन्तु यह तो कहिये कि आमों के

वाक्य में कहां पूर्वापर विरोध हुवा करते हैं वहुत अगस्त्य मुनि जी का नाम दूषित कर रहे हैं कि उन्होंने यज्ञ में पशु मारे ऐसा मनुजी का लेख है परन्तु उनको ऐसा वचन बोलने से धर्म्मका भय करना योग्य है इस झूंठकी परीक्षा कुछ कठिन नहीं क्योंकि अगस्त्य मुनि मनु जी से पीछे उत्पन्न हुवे तो भला भूत कालकी क्रिया सहित अगस्त्य जी का उदाहरण किस प्रकार दे सकते हैं। और सो जब महा श्रेष्ट और पवित्राचार युक्त देव सम ब्राह्मण और पितरों की तृप्ति मांस द्वारा हुई तो असुर पिशाच राक्षसों का भक्ष और आचारानाचार धारण करने से देव और राक्षस संज्ञा सनातन काल से होती चली आई हैं रावण और कुम्भकर्णादि मद्य और मांस के भोगी होने से निन्दित और राक्षस कहलाये इसे कौन नहीं जानता फिर उस ही भक्ष से पितरों का अनन्त काल पर्य्यन्त तृप्त होना राक्षसों से किस बात में भेद कराता है। आगे यह समझिये कि जिन लोगोंका इस मांस विधि में सर्वथा विश्वास हो है तो हम उनसे पूंछते हैं कि संसार में खर्च की बचत और श्रम की बचत सब किसी को प्यारी है तो आप लाल करेब वा गैंड़ेका मांस देकर सदा कालकेलिये पितरों को क्यों नहीं निबटाते जिससे वह अतुल प्रसन्न होकर आशीर्वाद से आपको सदैवके लिये निहाल करें यदि यह असभ्य होतो श्वेत वर्ण के लम्बे कान के बकरे जिनकी इन्द्रिय क्षीण नहीं मिल जावेंगे पाठकगणों! अब यह मांसभक्षण की विधि और निषेध याथातथ्य से आप के सम्मुख है पक्षपात को त्याग धर्म्म को साक्षी समझ परमेश्वर को सर्वगत जान सत्यान्तःकरण सहित अपनी सम्मति प्रकाश करना कि मन्वादि महर्षि युक्ति प्रमाण से शून्य वेदों के प्रतिकूल आप्त और धर्म्मात्माओं के

आचरण से विरुद्ध स्वतः पूर्ण योगीश्वर और ऋषीश्वर होकर इस प्रकार मांस भक्षण की विधिद्वारा मृत पितरों का श्राद्ध होना स्थिर करते ? हमारी समझमें न्याय युक्त धार्मिक जनतो हमारे संग इस विचार में सम्मत होंगे कि यह किसी वेद विरोधी धर्म्म द्रोही हड़चसोड़ महापातकी ने दोष भार मनुजी के गले लिपटाकर अपनी और अपने सहयोगियों की डाढ़ गरम करने के अर्थ इतना जाल रचाहै परन्तु भला मनुजी महाराज पर कहीं ऐसे विषयाशक्त लोगों की चेष्टा से कलंक का छींटा आसक्ता है जिनके मणिवत् ग्रन्थ में आप्तोक्त और वेदोक्तवचन अलगके अलग झलक रहे हैं यह तो केवल उन हिंसकों ने अपने अपने महापापों को महात्माओं के नाम आगे धर २ के द्विगुण करड़ाला और इस पाप कर्म्मका कारण यह भान होता है कि जब भारतमें अविद्या फैली तब कुछ स्वार्थ साधकोंने दुराचार का प्रचार करना चाहा किन्तु जब तक वे किसी आप्त वाक्य का प्रमाण न देते तब तक उन कों कौन मानता अतएव अविद्याके राज्य में उनकी बन पड़ी और मन मानी रीति मर्य्यादा चलादी॥ अब सत्यासत्य विवेकी जनो को श्राद्ध प्रकरण का परस्पर विरोध और अधर्म्मयुक्त प्रलाप देखकर निश्चय हो जावे गा कि मृत माता पिता बन्धु आदि को भोजन वस्त्र अलंकारादि प्राप्त होना मनुवाक्य और आप्त सिद्धान्त के अनुकूल कदापि नही है रहा युक्ति और तर्क प्रमाण सो कुछ कहना ही नहीं क्योंकि युक्ति की कसौटी पर जब मृत पितरों का खान पान करना आदि व्यवहार रखे जाते हैं और इन पर वाद विवाद छिड़ता है तो महा लज्जावान् होकर समय के उलटे चक्र की गति पर बड़ा ही शोक आता है कि हाय

भारत ! तेरा ऐसा भी हीन भाग्य होना था जो इस प्रकार की असम्भव और असङ्गत प्रथा सत्य विद्या और बिज्ञान नष्ट हो जाने से प्रचलित हुई माता पिता बन्धु आदि सम्बन्धियों की सेवा करके सर्वबिधि उनको सुख पहुंचाना प्रत्येक सन्तानादि को अपना परम धर्म जानना चाहिये यहां तक कि उनके परलोक हुवे पश्चात् भी उनको सुख युक्त करने के अर्थ प्राणों का बलिदान करने पर भी उद्यत रहें जो यह दृढ़ निश्चय हो जावे और प्रत्यक्षादि प्रमाणों और पिण्डों के द्वारा अर्पण किये पदार्थ उनको प्राप्त हो ही जाते हैं परन्तु जब बालकों के समान खेल रचकर उनको आह्वान करके फिर लौटा देते हैं न आते दीखते हैं और न जाते परसे हुवे पदार्थों में न कुछ घटता है न उसका कुछ स्वाद कम होता है न पहुंचनें की रसीद है और न कोई साक्षी प्रत्यक्ष होती है किन्तु देखते भालते सब का सब और ही के पेट तले उत्तर जाता है तो किस प्रकार यह व्यर्थ पाखंड सत्य और सभ्य व्यवहार करके माना जावे, दूसरे यदि खाने पीने की वस्तु पितरों के अर्थ न दी जावे (जैसा कि प्रायः होता ही है) तो हम पूछते हैं क्या उनको कुछ दुःख मात्र ही होता है वा पितृ लोक में भी भूख की पीड़ा सहन न करके मृत्यु को प्राप्त हो जाते है यदि कहो कि पीड़ा नहीं होती तो सिद्ध हुवा कि हमारे जैसी भूख प्यास भी उन्हें नहीं व्यापती क्यों कि हमें भूख प्यास में भोजन प्राप्त न होवे तो अत्यन्त पीड़ित होकर मर जाते हैं और जब पितर अच्छे ही रहते है तो उन्हें भोजनाच्छादन की कुछ आवश्यकता न हुई और जो कहो कि हां भोजन न पहुचने से तो वहां भी मृत्यु हो होगी तो कृपा कर यह बताईये कि आगे भी फिर उनको कहीं जाने का

ठिकाना है ? यदि कहो हां देह छुटनेसे उनका आत्मा अन्यत्र चला जावेगा होते २ आपके कथन में अनवस्था दोष आपड़ेगा इस लिये सीधे २ वचन क्यों नही वोल देते कि प्रत्येक प्राणी अपने पाप और पुण्य के भोगार्थ एक शरीर छोड़ तुरन्त दूसरा धारण कर लेता है विशेष स्थान वा नियत काल का कुछ प्रमाण नही। यथा:—

आत्म शरीरेन्द्रियार्थं वुद्धि मनः प्रवृत्ति दोष प्रत्यभाव फल दुःखाऽपवर्गा स्तु प्रमेयम्। न्याय दर्शन। अ०१। आन्हिक १। सूत्र ९॥

(वात्स्यायन०भाष्य०) तत्रात्मा सर्वस्य द्रष्टा सर्वस्य भोक्ता तस्य भोगायतनं शरीरं भोग साधनानीन्द्रियाणि भोक्तव्या इन्द्रियार्थाः॥

वात्स्यायन मुनि स्पष्ट कहते हैं कि (भोगा यतनंशरीरं) भोग अर्थात् सांसारिक पदार्थों का स्वाद चखने का स्थान शरीर है भोगने के साधन इन्द्रियां है भोक्तव्य इन्द्रियार्थ हैं अर्थात् भोक्तव्य पदार्थ हैं। इस से उक्त महर्षि महाशय का अभिप्राय यही है कि जब तक आत्मा शरीर को छोड़ द्वितीय शरीर धारण न करे तबतक भोगमें असमर्थ होता है॥ तथा गीताका भी यही आशय है कि:—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि॥ तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़ कर नए

धारण करता है वैसे ही पुराने शरीर को छोड़ कर प्राणी नया शरीर लेलेता है जब यह बात है तो भी आपके पिण्ड-प्रदान करने निष्फल ही ठहरे क्योंकि न जाने अगणित योनियों में से शरीर छोड़कर यह जीव कौन योनि में पहुंच जाता है फिर वहां अपने कर्म्मानुकूल जैसा कुछ होता है यदि मनुष्य से भिन्न किसी पशु पक्षी वा कीटादि का शरीर पा लिया हो तो आपके माल पुवे लड्डूआदि से उसे क्या लाभ हुवा जहां घास, पत्ती, मांस दुग्धादि की अपेक्षा है और मनुष्य देह में माने तो फिर यह बनी बनाई ही है कि सब मनुष्यों को पूर्व जन्म की सन्तान के किये श्राद्ध इस जन्म में मिलने ही चाहियें सो प्रत्यक्ष दीखता ही है कि विना अपने हाथ पैर हिलाये अचार केसे घड़े धरे रहो न पेट को पहुचती है न तनढ़कता है। १० प्रकार के स्वांग रचोगे और भाग दौड़ में पड़ोगे तब ही आजीवन का निर्वाह होगा इत्यादि श्राद्ध और तर्पण मृत पुरुषोंका किसी विधि सिद्ध नहीं है। देखो!

अग्निष्वात्तानृतुमतो०

इत्यादि यजुर्वेद के मंत्रों में भी परमेश्वर यही उपदेश करता है कि जिस प्रकार तुम लोग अनेक उत्तम २ भातिकी विज्ञानादि विद्याओं के जानने वाले पितर लोग अर्थात् पिता पितामह आचार्य्य ब्राह्मणादि विद्वानों को निमन्त्रित करके उनका मान्य और सत्कार किया करते हो इसी प्रकार तुम भी उनके निकट जाया और आया करो अर्थात् उनको बुलाने और आप उनके समीप जाने का परस्पर व्यवहार रखकर नित्य उत्तम २ उपदेशों को प्राप्त करते रहो बस जब एकान्त में बसनेवाले माता पिता और ब्राह्मण आचार्य्य जो पितर हैं

उनको सदा बुलाना और उनके पास जाना परमेश्वर ने कहा है तो निश्शंक मृतकों का पिण्ड प्रदानादि द्वारा श्राद्ध करना यथार्थ नहीं ॥

कन्या पाणिग्रहणका समय ।

पु० का० पृष्ट ५० पंक्ति १३ पृ० ५३ पं ८ पर्य्यन्त ।

स० ऊपर के लेख से यह उत्तम भान्ति प्रकट हो गया कि इस पुस्तक के रचने मे पुस्तक कारका यथार्थ प्रयोजन केवल देश संशोधक, सत्योपकारी वेद मतानुयायी लोगों से डाह खाना और द्वेषा नलके प्रचण्ड उत्ताप में दग्ध होकर जिस प्रकार से बने स्वार्थ सिद्ध करना और संसार में नाम प्रसिद्ध के अर्थ आचार्य्य की पदवी प्राप्त करना है क्योंकि उनकी दो रङ्गी और स्वार्थ की ओर ढलती हुई चाल आप ही उनके भीतर के भावको प्रत्यक्षकर रही है जैसा कि उनका इस प्रकार पैंतरे बदलना कि "त्रीणि वर्षाण्यु० इस मनुवाक्य को (जिसका यह तात्पर्य्य है कि कन्या रजस्वला हुवे पश्चात् तीनवर्ष पर्य्यन्त विवाह नकरे) प्रथम अश्रद्धेय ठहराना फिर उसका उलटा और हानि कारक अर्थ लगाना और अन्तमें अपनी सम्मति पूर्वक एक मनु वाक्य ही को प्रामाणिक लिखकर लेना। इस अनूठा चालसे पाठकगण प्रतीत करलेवें कि पुस्तक कारका मनोरथ केवल यह कि मनु वाक्य है तो सत्य परन्तु आर्य्य समाज वालोंके प्रमाण करने से वह मिथ्या और अश्रद्धेय इस लिये है कि आजकल उसके विरुद्ध वर्त्ताव वर्त्त रहा है यदि यथार्थ में उसही के अनुकूल वर्त्तें तो साधारण लोग धर्म्मात्मा कहना छोड़ देवें और अन्त में जोमनु वाक्य में सम्मत हो गये सो इस कारण कि जगत् यह दोष न देवे कि मनु जी से भी बड़े बनेजाते हैं वाह वाह। रोटी खाई शक्कर से

दुनियों लूटी मक्करसे" आपसे पूंछते हैं कि जिस दशामें मनु जी और अन्य ऋषि महर्षि जनों की स्मृति और धर्म शास्त्र वेदानुकूल विद्यमान हैं तो उनके विरुद्ध आपको सम्मति देनेके लिये किसने आप से निवेदन (मेमोरियल वा दर्खास्त) की थी कि आप आपनी सम्मति दीजिये दया करो कृपालो क्षमाकरो ऋषि योगी महात्माओं के विरुद्ध आज तक सम्मति देदेकर उनके स्मरणों का लुप्तकर २ भारत देशकी इति श्रीतो कर डाली अब क्या इसे जड़ मूल ही से नष्ट करके आहुति देने को हाथ फलाये हो आप लिखते हैं कि "ईश्वर देने लगे तो उक्त अवस्था (रजस्वला होने के ३ वर्ष पीछे तक जो मनु जीने कन्या का विवाह समय निश्चय किया है) में दो तीन सन्तान हो जाती हैं फिर सन्तति का प्रतिवन्ध करने से क्या लाभ" हा० हा० हा० जो कुछ देश को वल पराक्रम शूरवीरता विद्योपार्जनादि ऐश्वर्य्य के साधन थे सो बालकों से सृष्टि उत्पन्न कराने की रीति चला कर शीघ्रबोधके कर्त्ता काशीनाथ जी रसातल को भेज गये, कुछ सम्हलने के उद्योग में लगथे तो उनका स्वाहा करने को बालादत्त जीने कमर बांधी हैं हाय! २ हेदैव इस भारत जननीकी रक्षाकर तेरा वज्ररूपी क्रोध बहुत हो चुकाहै। भला इस देशके सच्चे मित्र और परम हितेच्छुजन जो कुटपन के विवाह (शादी सगीर सनी) को ताजी रात हिन्द के विरुद्ध अपराध मानते हैं क्या वे पुस्तककार सरीखे पुरुषो को निर्दोषो छोड़ देवेंगे कभी नहीं। पाठकगण पुस्तककार के बुद्धि और ज्ञान की परीक्षा इतने से ही करलेवें कि १५ वा १६ वर्ष की आयु तक कन्या में सन्तान न होना सन्तानोत्पत्तिके प्रतिवन्ध के समान मानते हैं परन्तु उस आयु को पहुचने के पूर्व ही गुड़ा गुड़ी के समान अन

जान बालकों को गृहस्थ धारण कराकर विद्याध्ययनादि शुभ कर्मोंको सत्यानाश में मिलाना बल वीर्य्य बुद्धि पुरुषार्थ मट्टी कर दरिद्र आलस्य दुर्व्यसन अज्ञानता परस्पर द्वेष क्षय दमा तपेदिक आदि रोगों का आहार बनाना सत्य और सभ्याचार समझाते है ऋतुमती होने के तीन वर्ष पीछे मनुजी का कन्या ग्रहण समय नियत करनेके हेतु आप माता पिताकी अज्ञानता बताते हैं अर्थात् यदि माता पिता इतनी आयु लेने परभी स्वपुत्रीका विवाह न करें तो तीन वर्ष पश्चात् वह प्रतीक्षा न करे और आप ही पतिवर लेवे भला जो मनुजी माता पिता के दोष के हेतु उक्त अवधि नियत करते तो इस प्रकार के वाक्य स्वत: उनको अपने ग्रन्थ में वर्णन करते हुवे (जैसे कि पुस्तककारने अपने मस्तक में से निकाल कर धरे हैं) किसी का भय और लज्जाथी तनिक पाठक इन्द श्लोकके आशय को तो ध्यान पूर्वक विचारें क्या कहता है यथा:—

त्रीणि वर्षाण्यु दीक्षेतकुमार्य्यृतु मती सती।
ऊर्ध्वन्तुकालादेतस्मा द्विन्देत सदृशं पतिम् ॥

अर्थात् कन्या ऋतुमती हुवे पीछे तीन वर्ष पर्य्यन्त पतिकी खोज करे और गुण कर्म्म स्वभावादिमें जो सदृश वरहो उसे प्राप्त करे, जानना चाहिये कि मनुजीने पुरुष और स्त्री दोनों को ही वेद विहित धर्म्मादि व्यवस्था पालने मे समान अधिकार दिया है अर्थात् जिस भान्ति पुरुषको ब्रह्मचर्य्यादि आश्रम समाप्त करने पश्चात् गृहस्थी होना कहा है कि जिसका समय न्यूनसे न्यून २५ वर्ष की आयु और अधिकसे अधिक ४८ वर्ष तक है तो इसही प्रकार स्त्रीके लिये भी ब्रह्मचर्य्य पूरा करने पीछे गृहस्थमें आनेका नियम है स्त्रियोंके ब्रह्मचर्य्य का समय

न्यून से न्यून १६ वर्ष और अधिक से अधिक २४ वर्ष है।
यथा:—

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टासन्तानार्थश्चमानवाः।
तस्मात्साधारणोधर्मः श्रुतौपत्न्यासहोदितः॥

अर्थात् गर्भ धारणके अर्थ स्त्री सृजन की गई है और गर्भ स्थापन करने को पुरुष उत्पन्न किया है इन दोनो का वेदमें साधारण अर्थात् समान धर्म्म कहा है तथा:—

ब्रह्मचर्य्येणकन्या युवानं विन्दतेपतिम्।
अथर्व० अ० ३ मं० २४ काण्ड ११ मं० १८।

अर्थात् जिस प्रकार कुमार लोग ब्रह्मचर्य्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षाको प्राप्त होके अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियोंके साथ बिवाह करते हैं उसही भांति कन्या भी ब्रह्मचर्य्य सेवन सहित वेदादि शास्त्रोंको पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षाको प्राप्त युवती होकर अर्थात् युवावस्थामें पूर्ण विद्वान् युवावस्था युक्त पुरुषको प्राप्त होवे।

उल्लिखित वाक्योंसे स्पष्ट होगया कि १६ वर्षकी आयु पर्य्यन्त कन्याका बिवाह न करना मनुजीने वेदकी आज्ञासे कहा है आगे मुनिवर धन्वन्तरिजी के बचन पर भी ध्यान करना योग्य है।

ऊनषोड़शवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्तेपुमान्गर्भं कुक्षिस्थः स बिपद्यते॥
जातोवानचिरञ्जीवेज्जीवेद्वादुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

अर्थ १६ वर्षसे न्यून बयवालीस्त्रीमें २५ वर्षसे कम आयु-वाला पुरुष गर्भस्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हो क्षीण होजावे वा गर्भके पूरे समयतक गर्भाशयमें रहकर उत्पन्न नहीं होता अथवा उत्पन्न होतो चिरकालतक न जीवे जीवे भीतो दुर्वल इन्द्रियों वालाहोवे इसलिये बाल्यास्थावाली स्त्रीमें गर्भ स्थापन नहीं करना इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध है कि वेदादि सत्य शास्त्रोंकी आज्ञानुसारही पुरुष और कन्या ब्रह्मचर्याश्रम में रह कर प्रथम बिद्यादि शुभ आचरणोंको सीखें पश्चात् अपने अपने सदृश प्राप्त होने पर परस्पर बिवाह करें अन्यथा महा दुःख उत्पन्न होगा इसही भांति धन्वन्तरी जीके आशयको बिचारें और आजकल जो अवस्था वर्त्तमान है उससे घटावें कि पूरी आयुमें पहुंचने से पहिलेही मृत्यु होजाना क्षयि आदि रोगोंसे सदा पीड़ित रहना उत्तम २ बिद्याओंसे अनजान बना रहना आदि छोटी आयुमें बिवाह करनेके फल हैं। सृष्टिक्रमकी व्यवस्था यानि कानून कुदरत परभी ध्यान देवें कि प्रत्येक व्यवहार अपने२ समय और ऋतुहीमें वर्त्तता है देखो पशु पक्षि आदि जातियोंमें कैसा स्वाभाविक नियम है जिसमें किञ्चित् भी व्यतिक्रम नही पड़ता सारांश यह है कि इस प्रकार की परमेश्वरीय नियम और व्यवस्थाओं का उत्तम फल जान और समझ कर अल्प आयुकी बिवाह से सदा रक्षा करें।

तीर्थ माहात्म वर्णन।

पु० का० पृ० ५३ पंक्ति ८ पृ० ५५ के अन्त पर्यन्त।

स० तीर्थके विषय में जो पुस्तककार और हमारे बीच में परस्पर भेद है सो पाठकगणों के ज्ञातार्थ लिखा जाता है वह यह है कि हम तीर्थ को करण कारक शब्द मेंलेते हैं जिसकी

व्युत्पत्ति यह है तीर्य्यते तरन्ति वा अनेनेति तीर्थम् ॥ अर्थात् जिसके द्वारा उत्तीर्ण हो वा पार उतरे वह तीर्थ है जैसा कि वेदादि सत्य शास्त्रों के अध्ययन और उनकी ज्ञान प्राप्तिसे अविद्या और अज्ञान युक्त भ्रममें डालनेवाले जो दुःखरूप कर्म्म हैं उनको पार करके सत्य ज्ञान और सत्य सुखमूलक व्यवहारों को जो सिद्ध करना है इस कारण वेदादि शास्त्र तीर्थ हैं माता पिता आचार्य्य गुरु अतिथि ब्राह्मण विद्वान् पितर आदि की आज्ञा पालन सेवा शुश्रुषा सत्सङ्गादि प्राप्त करनेसे आत्मा शुद्ध और दुःखोंसे पार होकर जो आनन्द लब्ध करता है इस लिये माता पिता आदि तीर्थ हैं इसही भांति सांसारिक सम्बन्ध और चिन्ताओंसे दूर होकर निर्जन और रमणीक पवित्र स्थानों तथा मुनि आश्रमोंमें जाय बसना अथवा गंगा यमुना आदिके सन्निधि में निवास धारण करके सुन्दर रोग नाशक जलपान करने और शुद्ध पवन भोगनेसे शरीर का स्वास्थ्य आरोग्य रख कर योगाभ्यासादि मोक्षके साधनों को जो प्राप्त करना हैं इस हेतु पूर्वोक्त आश्रम और गंगा यमुना आदि भी तीर्थ हैं सारांश यह है कि जिन२ कर्मों और सत्य व्यवहारोंके द्वारा सत्य ज्ञान सत्य वैराग्य और सत्य और पवित्राचारकी प्रवृत्ति होनेसे आत्मा की शुद्धि वह ईश्वर प्राप्तिके योग्य होवै वही सर्वोपरि सर्वोत्कृष्ट तीर्थ हैं इतर सांसारिक व्यवहारों में भी जिस जिस कर्म्मकेद्वारा जो २ क्लेश निवृत्त होवें उस उस क्लेशसे पार करने का वही तीर्थ है जैसे औषधि सेवन से रोग निवृत्त होता है तो उसका सेवन करना भी एक प्रकार का तीर्थ है परन्तु जिस यत्नके आश्रय से जो दुःख दूर होवै उसको उतना ही तीर्थ मानना योग्य है न कि इस भांति जैसा कि भ्रान्तिवश

होनेसे आज काल अनेक भारतवासी जलको आत्मशुद्धि और मृत्तिका तीर्थ मान रहे हैं जो कि वास्तव में शरीर शुद्धि और मलीनता आदि अवगुणों से रहित करनेके हेतु शारीरक निर आलस्यका तीर्थहै जैसा कि मनुजीनें कहाहै। यथा।—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

अर्थात् जलसे शरीर शुद्ध होता है सत्य से मन और विद्या और तप से भूतात्मा और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है इस ही प्रकार किसी मुनि आश्रम वा रमणीक विशेष स्थान के दर्शन मात्र को मुक्ति प्रदायक तीर्थ समझना भ्रम है परन्तु वहां का निवास जो सांसारिक चिन्ताओं तथा इन्द्रियोंके विषय भोगसे हटा कर एकान्त ईश्वराराधनमें प्रवृत्त कराताहै सो सत्य तीर्थ है। मनुस्मृतिके ८ अध्यायके ९२ श्लोक में पुस्तककार गङ्गा और कुरुक्षेत्र को आत्म शुद्धि और पाप निवृत्ति को तीर्थ सिद्ध करतेहैं सो किसी प्रकारसे ठीक नहीं है क्योंकि मनुजीके समय में गङ्गाजी का होना ही नहीं बनता कि जिसको महाराज भगीरथ बड़े परिश्रम से लाये हैं इसे कौन नहीं जानता और भागीरथ जी मनु महाराज से कितने ही वर्ष पश्चात् उत्पन्न हुवे तो मनु जी उस कार्य्य का वर्णन किस विधिसे कर सक्ते हैं जो कि उनके बहुत पश्चात् किया गया अर्थात् जब वह उपस्थित नहीं थे और कुरुक्षेत्र आप तीर्थ मानेंगे तो उस ही काल मे मानेंगे कि जब से वहां कौरव पांडव का युद्ध हुवा जो कि पांच सहस्र वर्ष के लग भग की बात है फिर मनुजी का समय देखलीजीये कबथे इन कारणों से गंगा जी और कुरुक्षेत्र को मनुजी का कहा हुआ तीर्थ समझना सर्वथा असम्भव औरहै

उक्त महर्षि तो पूर्वोक्त वाक्य में स्पष्ट कहचुके कि जल से शरीर मात्र शुद्ध होता है आत्मा नहीं जब मनु वाक्य में ही गंगादि तीर्थ नही कहे तो वेदों में यह शङ्का उठाना और भी महाभ्रान्ति हैं जिस मंत्र से आप गंगादि का नाम सिद्ध करते है वहां गंगा यमुना नदी जो हिमालय से निकली है इनका लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीं क्योंकि गंगा पिंगला सुषुम्णा कूर्मजा रागनी यह नाड़ीयों के नाम वर्णन किये गये हैं कि जिनसे योगाभ्यासादि क्रिया सिद्ध होने से जीवात्मा जन्म मरणादि दुःखों से मुक्त हो जाता है युक्ति से भी गंगाजल में स्नानकरने से शरीरका शुद्ध होना चित्तका प्रसन्न होना रोगादिका नाश जलपान से आयु वल पराक्रम की उन्नति होना आदि अनेक लाभ सिद्ध होते है परन्तु आत्माकी पवित्रता तो तप और सत्य विद्याध्ययन दशप्रकार के धर्म्मानुष्ठान और इन्द्रियों के निरोध से ही होती है आत्मा शुद्ध होने और सत्य भगवत् ज्ञान प्राप्ती आदिके लक्षण यही हैं कि मनुष्य काम क्रोध लोभ शोकादि दोषों को दूरकर निष्पाप हो जावे परन्तु जो दर्शन वा गंगा स्नान में ही यह सामर्थ होता तो अनेक मनुष्य मेलोमें एकत्र होकर चोरीठगी व्यभिचार आदि अनेक पापकर्म कदापिन करते कि जिनमे कितने ही तो ऐसे दुष्ट होते है कि जलके भींतर प्रवेश करके स्नान करने वाली स्त्रियों के आभूषण तक हरण करलेते हैं बिचारिये कि जव गंगा जी के दर्शन मात्र हीसे कई जन्मके पाप नाश होते मानते होते तो क्या उसके जल में प्रवेश करने से एक जन्म के कुछ दिन वा-घंटो के पाप कर्म्म रोकने की भी शक्ति नहीं होनी थी ? उधर जहां तहां व्यभिचार से उत्पन्न पड़े हुवे अनाथ वालक देखने में आते हैं इत्यादि इस प्रकार कुव्यवहारों से उत्तीर्ण होनेके

अर्थ सत्य तीर्थ केवल इन्द्रियों का निरोध विद्वानोंका सत्संग सत्यज्ञान सत्य वैराग्य सत्य विद्या शुद्धाचरण है और नहीं दूसरे आप भी वास्तव में यही व्यवहार मानते हुवे जान पड़ते है क्योंकि यदि एक नीच मनुष्य जिस के हाथ का जलपानादि व्यवहार त्याज्य है गङ्गा स्नान से पाप रहित और शुद्ध हुवा माना जाता तो उसके हाथ के जल पान और खाद्यादि पदार्थ भी अवश्य मेव ग्रहण किये जाते परन्तु यह बात नही है। जो मनुष्य गंगा स्नान से पूर्व जितना नीच और अन्त्यज माना जाता है उतना ही उसके ब्रह्म कुण्ड पर स्नान करने पर भी उच्च जाति के लोग उस से बचकर और उसके हाथ से जलादि ग्रहण करने से पृथक् रहते हैं अतएव गङ्गा यमुना को उस ही प्रकार तीर्थ मानना योग्य है जिस प्रकार हम ऊपर कह आये हैं।

अब बालादत्त जी के सम्पूर्ण लेखों पर समीक्षा समाप्त करनेके पश्चात् हम दृढ़ आशा रखते हैं कि वे प्रत्येक विषय की समीक्षा में जो २ युक्ति और प्रमाण प्रकाश किये गये है उनको पक्षपात रहित होकर शुद्धान्तःकरण द्वारा बिचारेंगे क्योंकि विना ऐसा किये धर्मका निर्णय और सत्या सत्य का विवेचन नहीं हो सकता आगे उनकी इच्छा रही चाहे इस हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें अथवा अपनी इष्ट सिद्धि तथा कार्य्य पूर्त्तिको ही धर्म्मका मूल समझें परन्तु शोक यही है बहुत सा कागज मसी समय व्यय करने और लेखनी घर्षण करनेके उपरान्त भी यथार्थ ईश्वर ज्ञान प्राप्ति और सत्य सनातन वेदोक्त धर्म्म प्रवृत्ति के साधनों में से एक को भी अपने पुस्तक में हमारे वन्धु ने स्थान न दिया कि जिस के द्वारा मनुष्य अपने शरीर आत्मा वुद्धि और ज्ञान और ऐश्वर्य की उन्नति प्राप्त करके

अविद्या आदि दुष्ट व्यवहारों से उत्पन्न छल कपट परस्पर द्वेष कुसंस्कार आदि अनेक हानि कारक मर्य्यादा ओं से छुट कारा पाकर सत्यज्ञान सत्य व्यवहार परस्पर मित्रता देश और जाति के शुभाशुभ के विचार की ओर झुकते और उक्त पण्डित जी के गुणानुवाद गाते। हां जाति विशेष वा मनुष्य विशेष वा मनुष्य विशेष की प्रयोजन सिद्धि के अर्थ तो अनेक प्रकार के युक्ति प्रमाण तथा वेद शास्त्र तकको भी रंगेड़ डाला अब जिन लोगोंका नाम आप आपा पंथी आदि विशेषणों के साथ उच्चारण करते हैं और जिन्हे देख आपके आत्मा में दाहक शक्ति भड़क रही है उनका अर्थात् आर्य्य समाजस्थ लोगों का धर्म्म तथा वेदोक्त धर्म्म प्रवृत्ति के अर्थ जो २ उन्होंने नियम स्थिर किये है सो सुनिये और वृथा हठ और ईर्षा को त्याग परस्पर ऐक्य भाव को प्राप्त होकर मातृ भूमि की हीन दशा निवारण करने में उद्यत हूजिये कि जो विद्वानों और परोपकारी जनों का धर्म है।

ओ३म्

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते

प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छाया मृतं

यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

सबसे प्रथम संक्षेप पूर्वक धर्म्मका रूप प्रकाश करना अर्थात् धर्म्म किस वस्तुको समझना चाहिये इस विषयमें किञ्चित् कथन होना आवश्यक है अर्थात् जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन जिसको सत्यमानी सत्यवादी सत्यकारी परोप-

कारक पक्षपात रहित आप्त लोग सदा कालसे मानते आये हैं जिसका विरोधी संसारमें कोई भी न हो और प्राणी मात्रके लिये सर्व हितकारी प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सुपरीक्षित और जिसका सेवन अनन्त सुख की प्राप्ति हो वह धर्म्म कहाता है ऐसे धर्म्म की यथार्थ उन्नति के अर्थ निम्न लिखित नियम प्रत्येक व्यक्तिगणको पालन करने योग्य हैं।

१।—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

व्याख्या—इस नियम का तात्पर्य्य यह है कि इस सृष्टि में जो जो पदार्थ विद्यमान हैं और जिन जिन सत्य विद्याओं का प्रकाश वर्त्त रहा है तथा उक्त विद्याओंके द्वारा जिन जिन सूक्ष्म वा स्थूल पदार्थों का ज्ञान जीव प्राप्त कर सकते हैं उन सब विद्याओं और पदार्थों का कर्त्ता परमेश्वर है अर्थात् सृष्टि विना कर्त्ता के नहीं रची गई॥ इस नियम के विरूद्ध वर्त्तनेवालों की संज्ञा नास्तिक होती है॥

२।—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान' न्याय कारी, दयालु अजन्मा अनन्त निर्विकार, अनादि अनूपम सर्वाधार, सर्वेश्वर सर्व व्यापक सर्वान्तर्य्यामी, अजर, अमर, अभय नित्य पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है।

व्याख्या। इस नियमका तात्पर्य्य यह है कि इसमें वर्णन किये हुए जो परमेश्वरके गुण कर्म्म और स्वभाव हैं उनमें से प्रत्येक गुणके यथावत् विचार सहित एतद्गुण सम्पन्न परमेश्वर ही की उपासना करना अन्य किसी की नहीं मनुष्य देह धारियों का कर्त्तव्य धर्म्म है अर्थात् ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है इसके विरुद्ध अविद्या आदि दोषोंसे युक्त और जन्म मरण आदि क्लेशोंसे बद्ध उसे न मानना परमेश्वर निराकार है इसके वि-

रुद्ध उसका रूप कल्पना न करना और साकार न मानना परमेश्वर सर्वशक्तिमान है इसके विरुद्ध उसको बिना किसी अपने भक्त अथवा पुत्र सम अथवा मित्र अथवा देवता आदिकी सहायता प्राप्त किये किसी कार्य्यको पूरा करनेमें असमर्थ न समझना धर्म्मात्माओंके विश्वास योग्य व्यवहार नहीं है॥ परमेश्वर न्यायकारी है इसके विरुद्ध उसको स्वेच्छाचारी न समझना और सुख दुःख ऐश्वर्य्य तथा दरिद्रको अपने कर्म्मों का फल भोग न समझ कर उनको ईश्वर की इच्छाहीसे होना मानना अथवा इस प्रकार विश्वास रखना कि जिसे ईश्वर चाहे अपनी इच्छा मात्रसे बिना कारण सुखी करे वा जिसे चाहे दुःखी करे इत्यादि व्यवहारोंके मानने से ईश्वरके न्यायमें दोषारोपण न करना। परमेश्वर दयालु है इसके विरुद्ध दारुण दुःख और विपत्ति कालमें उसको निर्दयी अनुभव न करना किन्तु उक्त दुःख और विपत्तिमें सन्तोष धारणकर उनके परिणाम को अपने सुधार और हित का मूल समझना जैसा कि माता पिता अपनी सन्तान को ताड़ना के द्वारा सुखी करके पुनः सुशिक्षा और सद्व्यवहार में प्रवृत्त करते हैं अथवा वैद्य लोग जिस प्रकार रोगीको प्रथम तीक्ष्ण और कटु औषधि सेवन करानेमें दुख प्रदान करके पश्चात् में सुखयुक्त कर देते हैं इत्यादि उदाहरणों से परमेश्वरको दयावान् ही मानना॥ ईश्वर अजन्मा है इसके विरुद्ध मनुष्य विशेषको उसका माता पिता समझना और उनके द्वारा उसका जन्म मानना सत्य व्यवहार नहीं है। परमेश्वर अनन्त है इसके विरुद्ध उसको सान्त (महदूद) समझ कर देह धारण करने वाला जानना यहां था वहां गया और वहां आवेगा इस प्रकारकी क्रिया उसमें आरोप करना इत्यादि व्यवहार अनन्त

परमेश्वरमें नहीं घटते निदान उसकी सीमा नहीं है और उसका अन्त कोई नहीं पासक्ता ऐसा विश्वास रखना परमेश्वर निर्विकार है इसके विरुद्ध उसके स्वभावमें बदल मान कर उसे सदैव एकसा न समझना कभी मनुष्य कभी पशु कभी अन्य प्रकार का बन जानेवाला जानना दुःख पीड़ा आदि विकारों का भोक्ता होना सत्यधर्मी लोगोंको कभी नहीं मानना चाहिये ईश्वर अनादि है इसके विरुद्ध उसकी आदि मानना यथार्थ नहीं॥ ईश्वर अनूपम है अर्थात् उसके सदृश दूसरा कोई न मानना और सदा यही विश्वास रखना कि उसके गुण अन्य किसी वस्तुमें संघटित नहीं होसक्ते इसी लिये वह अद्वितीय कहाता है॥ ईश्वर सर्वाधार है अर्थात् ऐसी वस्तु कोई भी न समझना जिसका आश्रय स्थान परमेश्वर न हो किन्तु सब जड़ और चेतन पदार्थों की स्थिति उसही की सत्ताके आधीन जानना॥ परमेश्वर सर्वेश्वर है अर्थात् उससे अधिक बलवाला और उससे ऊपर कोई नहीं तथा सम्पूर्णका स्वामी और विश्वपति उसही को मानना ईश्वर सर्व्व व्यापक है इसके विरुद्ध किसी वस्तुको भी ईश्वरकी सत्तासे अतीत न मानना अथवा किसी स्थल मात्र वा पदार्थ विशेष को ही उसका वास स्थान विश्वान करलेना और अमुक वस्तुमें वह विराजमान है अथवा अमुकमें नहीं ऐसी कल्पना करना सर्वथा अयोग्य है परमेश्वर सर्वान्तरयामी है अर्थात् प्रत्येक विचार जो आत्मा और शरीरके भीतर हो अथवा प्रत्यक्ष में प्रकट हो परमेश्वर एक ही समान जानता है ऐसा विश्वास रखना और इसके विरुद्ध यह अनुभव न करना कि अमुक घटना तथा अमुक वृत्तान्त का ज्ञान परमेश्वर को विना अमुक देवता वा पुरुष के जनाये प्राप्त न हुवा। ईश्वर अजरहै अर्थात् वह बालक

तरुण और वृद्ध कभी नहीं होता। परमेश्वर अमर है इसके विरुद्ध उसका शस्त्र आदि के द्वारा मृत्यु होना कदापि विश्वास योग्य नहीं अर्थात् वह कभी मरण को प्राप्त नहीं होता। परमेश्वर अभय है इसको भय भीत जान बिना दूसरे की सहायता पाये आतुर हो जाना मनाना नहीं चाहिये। परमेश्वर नित्य है अर्थात् उसका कभी अभाव होगा ऐसा न मानना परमेश्वर पवित्र है इसके विरुद्ध उसको काम क्रोध मोह लोभ आदि अपवित्र व्यवहारो में प्रवृत्त होने वाला न मानना अथवा पवित्रताके विरुद्ध उलटे और उसके स्वभाव के विरुद्ध कर्म करने की शक्तिवाला समझना असत्य विश्वास है। परमेश्वर सृष्टि कर्त्ता है अर्थात् उससे भिन्न अन्य किसी को सृष्टि रचने की शक्ति वाला न मानना।

३। वेद सत्य विद्याओंका पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्योंका परम धर्म है।

व्याख्या—इस नियम का तात्पर्य्य यह है कि सत्य विद्या और सत्य प्रकाशक ज्ञानका नाम वेद है अर्थात् जिस में और अयुक्त विषयका लेश नहीं वही वेद है यथा ऋक् यजु साम और अथर्व मन्त्र संहिता हैं उनकी सर्वथा सत्य विद्याओं से पूर्ण होनेके कारण वेद संज्ञा है और स्वतः प्रमाण हैं अर्थात् जिनकी सत्यता सिद्ध करने के अर्थ किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं है और जो जो ग्रन्थ वेदोंके विषयों के अनुकूल ऋषि मुनि आप्त पुरुषोंके रचे हुवे प्रत्यक्षादि आठों प्रमाणसे सिद्ध प्राणि मात्र के कल्याणेच्छु हों उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदोंके आधीन मानना जैसा कि न्याय आदि षट्दर्शन केन कठ आदि उपनिषद् ऐतरेय आदि ब्राह्मण मनुस्मृत्यादि धर्मशास्त्र वेदानुकूल होने से मान्य हैं इत्यादि वेदों को पढ़ना पढ़ाना

सुनना सुनाना और उनके अनुकूल आचरण रखने के अर्थ उद्योग करना व्यक्ति मात्रको परमधर्म जानना चाहिये अब वेद बिहित यथार्थ मूर्त्तिपूजन देव पूजन श्राद्ध तर्पण तीर्थ सेवनादि जिनको चतुराश्रमी जन नित्य पालन करके धर्म अर्थ काम मोक्ष आदि सुखों को प्राप्त करें उनको संक्षेप से यहां प्रकाश करते हैं।

प्रथम अनेक उत्तम२ विद्याओं तथा उत्तम२ क्रिया और शुभ व्यवहारों के सिध्यर्थ कन्या और कुमारोंको पूर्ण युवावस्था को प्राप्त होने के पूर्व ब्रह्मचर्य आश्रम धारण करना योग्य है यथा वैदिक प्रमाण—

ब्रह्म चार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घ श्मश्रुः ससद्य एति पूर्वस्मा दुत्तरं समुद्रं लोकान्त्सम गृभ्य मुहुरा च्चरिक्रत।

अर्थ जो ब्रह्मचारी होताहै वही ज्ञानसे प्रकाशित तप औरबड़ी दीक्षाको प्राप्त होके विद्या प्राप्त करता है तथा जोकि शीघ्रही बिद्याको ग्रहणकरके पहिलासमुद्र जो ब्रह्म चर्याश्रमका अनुष्ठा न है उसको पारउतरता है तत्पश्चात् गृहआश्रममें प्राप्त होकर श्रेष्ठ विद्या ओंके बिचारसे स्वसौभाग्यको वढ़ाता है।

षटत्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौत्रै वैदिकं व्रतम् तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्ति कमेववा ॥ मनु ॥

अर्थ आठवें वर्ष से आगे छत्तीस वें वर्ष पर्य्यन्त अर्थात् एक २ वेद को साङ्गो पाङ्ग पढ़ने में बारह २ वर्ष मिलके छत्तीस और आठ मिलके बयालीस अथवा अठारह वर्षों का ब्रह्मचर्य और आठ पूर्वके मिलके छब्बीस वा नौ वर्ष तथा जबतक

बिद्या पूरी ग्रहण न कर लेवे तब तक ब्रह्मचर्य रक्खे। उल्लिखित प्रकार से बलबीर्य शरीर आदिकी रक्षा करते हुवे बिद्याध्ययन समाप्त करने पश्चात् गृहाश्रम मे प्रवेश करे। इस भांति गृहाश्रम धारण करने के पश्चात् गृहस्थ लोगों को जो बेद बिहित पंच महा यज्ञ नित्य कर्म करने चाहिये सो करते हैं यथा—

अध्यापनं ब्रह्म यज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमोदैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम्।
मनु० अ०३ श्लो० ७०।

अर्थात् वेद आदि शास्त्रोंका पाठ संध्योपासन ईश्वर की प्रार्थना स्तुति आदि कर्मोंका नाम ब्रह्म यज्ञ है दूसरा अर्थात् पुष्टिकारक पदार्थ जैसा कि घृत दुग्धादि मधुर जैसा कि शर्करा आदि सुगंधित जैसा कि केशर कस्तूरी आदि रोग नाशक जैसे कि सोमलता और गिलोय आदि द्रव्योंसे अग्नि में होम करके जल और पवन को शुद्धकर संसार को बिबिध सुख पंहुचाने का नाम देव यज्ञ, तीसरा बृद्ध पिता माता (बिरक्त अथवा गृहस्थ) गुरू आचार्य्य सम्पूर्ण बिद्यादि श्रेष्ठ गुणोंसे पूर्ण ब्राह्मण इत्यादि बिद्वान् रूप देव ऋषिगणों को शुश्रूषा और सत्कार करने का नाम तर्पण चौथा भोजन समय में पाक किये हुवे भोजन में के भागनित्य प्रति निकाल करके कंगालों रोगियों छोटे २ कृमि पक्षि आदिकों में बांटना बलि वैश्व देव कहाता है पूर्ण बिद्वान् परोपकारी जितेन्द्रिय धार्मिक सत्योप देशक जो भ्रमण करने वाले अतिथि गृहस्थ में आकर निवास करें उनको अन्न जल आदि से तृप्त करना अतिथि यज्ञ कहाता है यह संक्षेप से सब

मनुष्यों के नित्य धर्म कहे अब आगे वेद बिहित मूर्ति पूजाका बिधान किया जाता है।

मावधीः पितरं मोत मातरं यजु० ॥ १ ॥

आचार्य्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणा मिच्छते।२।

अतिथि गृहानुप गच्छेत् ॥ ३ ॥

अथर्व ॥ अर्चत प्रियमेधा सो अर्चत ॥ ऋ ॥

मातृ देवो भव पितृ देवोभव आचार्य्य देवोभव अतिथि देवो भव ॥ तैत्तिरीयो० ॥ आचार्य्यो ब्रा-ह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः। माता पृ-थिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्ति रात्मनः ॥ मनु अ०२ श्लो० २२५।

अर्थात् माता पिता आचार्य्य अतिथि आदिकी तनमन धन से सेवा करनी पञ्चायतन मूर्ति पूजा कहाती है॥ तथा मनु बाक्यका भी यही अभिप्राय है अर्थात् आचार्य्य परमात्मा की मूर्ति पिता ब्रह्मा अर्थात् यही मूर्तिमान् पूजनीय देव हैं सब मनुष्यों को योग्य है कि उपर लिखे वेद और स्मृति बाक्यों को पक्षपात रहित होकर बिचारें और जो यथार्थ देव और मूर्ति पूजा है उसीको धारण करें परन्तु जो कोई मनुष्य पूर्वोक्त माता पिता आचार्य आदिकों में बिशेष अनुराग भक्ति बा प्रेम रखनेके कारण उनकी प्रतिकृति (तसवीर) प्रतिबिम्ब फोटो तथा धातु आदिकी प्रतिमा अपने स्थानमें रखना चाहे अथवा चौखटे में अलंकृत करके गृह में लगाना चाहै और उनके दर्शन से चित्तकी प्रसन्नता मानें तो यह

कोई अनुचित व्यवहार नहीं है परन्तु यदि उन प्रतिबिम्बादि वस्तुओं को खान पान गंधपुष्प आदि भेट करने ही से वास्तव में माता पिता आदिको उन सबका प्राप्त हो जाना विचारे तो यह महा अज्ञानता और भ्रांति है अब कुछ थोड़ासा श्राद्ध विषय में भी वेद और मनुस्मृति के प्रमाण सहित वर्णन किया जाता है। पितृ पितामह प्रपितामहाः मातृ पिता महि प्रपिता मह्यः।

सगोत्रा संवन्धिन० ॥ अक्रोधनाः शौच पराः सततं ब्रह्मचारिणः न्यस्त शस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्व देवता ॥ मनु० अ० ३ ॥ श्लो० १९२ ॥

ऊपरके वेदवाक्य और मनुके वचनोंसे यथावत् रीतिसे सिद्ध है किविद्यमान अर्थात् जिवित माता पिता आदि तथा अ-क्रोध जितेन्द्रिय शुद्ध श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणो की पितर संज्ञा है इनकी श्रद्धा पूर्वक तन मन और धनसे भोजन छादन सहित सेवा करना श्राद्ध है इतर मृतकोंके अर्थ खाद्य आदि पदार्थोंको पंहुचाना उपर के वाक्यों से नहीं घटता तथा माता पिता पितामह और प्रपितामह तीनोंके श्राद्धका जो सत्य शास्त्रोमें विधान किया है उससे भी यही स्पष्ट अर्थ निकलता है कि उक्त माता पिता पितामह और प्रपितामह का जीवित रहना म-नुष्यो में सम्भव है प्रायः प्रत्यक्ष देखने में भी यही आता है कि पूर्वोक्त तीन पीढ़ीतकके मनुष्य बहुत विद्यमान हैं उनसे आगेके नहीं इसलिये इनतीनों काहीजो श्राद्ध कहा है सो जीवतकाल ही में होना बनता है ॥ यथा।

अग्निष्वात्तान्तुमतो हवामहेनाराशम् । से सोम-
पीथंय आशुः तेनो विश्वामः सुहवा भवन्तु वयं
स्यामपतयोरयीणाम् । १६ ॥ येचेह पितरो ये
चते हयांस्व विद्मयां ॥ २ ॥ उचन प्रविद्म । त्वं
वेत्थ पतिते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व
१७ । इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्यये पूर्वासोय
उपरासईयुः । ये पार्थिवे रजस्यानिषत्तायेवा
नूनं सुवृजमासुव्विक्षु ॥ १८ ॥

अर्थ हेमनुष्य लोगो जैसे अग्नि विद्या और सम यविद्याके जानने वाले पितरोंको मान्यसे वुलाते है वैसेहि तुमलोगभी उनकों अपने पास वुलाके सब विद्याको बढ़ाते रहो जो सोम आदि औषधियोंके पान और रचासे मनुष्यों को श्रेष्ठ करने वाले हैं उनसे हम सत्यशिक्षा प्राप्त करके आनन्दित होंवे विद्वान् लोग हमको सत्यविद्याका ग्रहण सदैव कराते रहें जिससे हमलोग सुविद्या और ऐश्वर्य्य आदि सुखों की रचा और उन्नति करते रहैं हे जातवेद परमेश्वर जो पितर लोग हमारे समीप और दूर देशमें हैं जिनको हम समीप होनेसे जानते हैं और दूर होने से नहीं भी जानते और जो इस संसारके बीच में वर्त्तमान हैं उन सब को आप यथावत् जानते हैं कृपाकरके उनका और हमारा सम्बन्ध सदाके लिये कीजिये और अपनी धारणादि शक्तिसे व्यवहार और परमार्थ रूप श्रेष्ठ यज्ञोंको सेवन करके हम लोगों को सुख युक्त कीजिये जो पितर लोग आप विद्वान् होके हमको विद्या देते हैं अथवा

सन्यासी होके विचरते हुए सर्वत्र उपदेश करते हैं उनको हमारा नमस्कार है जो पितर लोग भूगर्भ विद्या और सूर्य्यादि लोकों के जानने वाले हैं और जो प्रजाओं के हितमें उद्यत हैं सेनाओंके बीच में चतुर हैं उन पितरों को हमारा नमस्कार है इत्यादि इस प्रकार वेद और स्मृत्यादि की आज्ञानुसार जीवित माता पिता गुरू ब्राह्मण आदिकी भक्ति पूर्वक सेवा करके सदैव श्राद्ध करता रहै परन्तु जोकोई पूर्वोक्त पितरोंके मृत्यु हुए पश्चात् उनके विशेष विद्यादि परोपकार युक्त गुणोंके कारण सदावर्त नियत करके अथवा दीन और अनाथ मनुष्योंको संरक्षण कर तथा विद्यालय वा धर्म शाला आदि स्थापन करके इस संसार में उनका नाम चिरस्थायी करणा चाहै सो और भी विशेष पूर्वक श्राद्धहै जो ऐसा करैगा वह पूर्ण धर्मात्मा परोपकारी पुरुषो में परिगणन किया जाय गा।

वेदादि शास्त्रों में जो सत्य तीर्थ वीर्य वर्णन किये गये हैं सोयेहैं जनापेस्तरन्ति तानि तीर्थानि अर्थात् जिन करके मनुष्य दुःखोंसे तरें उनका नाम तीर्थ है समान तीर्थे वासी ॥ १ पा० अ० ४। ४। १०१ नमस्तीर्थ्यायच ॥ यजु० अ० १६ ॥

प्रभावा दुद्भते भूमेः सलिलस्यचतेजसः।
परिग्रहान्मुनीनाञ्च तीर्थानां पुण्यतास्मृताः ॥
सत्यं तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रिय निग्रह।
सर्व भूतदयास्तीर्थ सन्तोषस्तीर्थ मुच्यते:
ब्रह्मचर्य्यं परन्तीर्थ तीर्थञ्च प्रियवादिता ॥
ज्ञानंतीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थ मुदाहृतं
तीर्थानामपितत्तीर्थं विशुद्धि मनसः परा ॥

उल्लिखित वाक्योंका तात्पर्य्य यह है कि प्रथम जो वेदादि शास्त्र और सत्य भाषणादि धर्म लक्षणों से युक्त विद्वान् माता पिता आचार्य्य ब्राह्मण अतिथि आदि ये संपूर्ण तीर्थ हैं क्योंकि इनकी सेवा करने और इनसे विद्यादि श्रेष्ठ गुण प्राप्त करने से जीव अविद्या रूपी दुःखोंको तरकर शुद्धज्ञान आदि सुखों को पाता है दूसरे अग्नि होत्रसे लेके अश्वमेध पर्य्यन्त यज्ञोंका करना तीर्थ है कि जिन करके मनुष्य वायु वृष्टि जलादि शुद्ध और रोग रहित बनाकर तथा परस्पर प्रेम प्रीति प्राप्त करके प्राणिमात्र को सुख पहुंचाया करें॥ तीसरा ब्रह्मचर्य आदि आश्रम भी तीर्थ हैं जिनमें स्नान करने से मनुष्य अविद्या आदि दुःखोंको पार करके ऐश्वर्य्य आदि सुखों को भोग करते हैं॥ चौथा सत्य क्षमा दया दम शम धृति आदि सत्य तीर्थ हैं जिन करके मनुष्य जन्म मरण आदि दुःखोंको पार करके मुक्ति पदको पहुंच जाता है तथा महाभारत में भी तीर्थको इस प्रकार वर्णन किया है।

आत्मा नदी संयम पुण्य तीर्था
सत्योदका शील तटा दयोर्मि।
तत्राभिषेकं कुरुपाण्डु पुत्र
नवारिणा शुध्यति चान्तरात्मा:॥

अर्थात् हे युधिष्ठिर आत्मा रूपी नदी जिसके इन्द्रिय निग्रह अर्थात् इन्द्रियों का जीतना पुण्य तीर्थ हैं और जिसमें सत्य रूपी जल है और शील स्वभाव जिसके किनारे हैं और दया रूपी जिसकी लहरे हैं ऐसी नदी में तू स्नान कर जल से अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता है॥ यह संक्षेप से सत्य तीर्थ सेवनके विषय में कहा गया जोकि मनुष्य मात्रको अंगीकार

करके यथावत् पालन करना योग्य है तीसरे नियम का जो मूल आशय वेदोंके पढ़ने पढ़ाने और सुनाने से जो प्रत्येक मनुष्य को ठीक २ जानना चाहिये सो संक्षेप रीति से यह उपर वर्नन किया गया ॥ ४ ॥

सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये व्याख्या इस नियम का तात्पर्य यह है कि सत्यको यथावत् जान और समझ कर ग्रहण करने में किसी प्रकारका पक्षपात नहीं करना चाहिये जिसके विरुद्ध परोक्षमें किसी विषय को सत्य और धर्म युक्त स्वीकार करलेना परन्तु साधारण लोगों से मिथ्या कलंक पानेके भय से प्रत्यक्ष में उसको ग्रहण न करना धर्मात्मा लोगों के लिये उचित व्यवहार नहीं है अर्थात् सत्य ग्रहण करने में केवल परमेश्वर और धर्मके भयके उपरान्त किसी दूसरे का भय नहीं करना चाहिये।

सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

व्याख्या—इस नियमका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक कर्मके करने में धर्माधर्म सत्यासत्य को अवश्य विचारना चाहिये और सत्य और धर्मके संग व्यवहार वर्त्तने में यदि कोई प्रकार हानि भी प्राप्त हो उसको लाभ तथा सत्य और धर्म को छोड़ कर कर्म करने से लाभ भी उठावेतो उसको हानि करके मानना और इस प्रकार का विचार सदा महा अनुचित समझना कि बिना झूठके संसार में लाभ नही होता ॥ ६ ॥ नि०

संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक सामजिक उन्नति करना।

व्याख्या—इस नियम का तात्पर्य यह है कि उत्तम २

चिकित्सा आदि विद्याओंको प्राप्त करके और नाना प्रकार की औषधि आदिकी परिक्षा सहित और अन्यान्य क्रियाओं के द्वारा शरीर केवल पुष्टि पराक्रम आदि गुणोंको बढ़ाना विद्याओं से नाना प्रकार की अध्यात्म क्रियाओं खोज कर योगाभ्यास और जितेन्द्रिय तादि गुणोंसे आत्मा के यथार्थ रूप जाननेके अर्थ उद्योग करना अनेक विधि विज्ञानादि शास्त्रों की सहाय से भी शक्ति को बढ़ाना परस्पर द्वेष छल व्यभिचारादि कुसंस्कारों को निवारण करके सुसभ्य सुयोग्य सदाचार प्रवृत्त करना अल्पायु में विवाह और व्यर्थ धनादि खर्च करने और हानि कारक दुष्ट कुरीतियोंके हटाने और व्यापार वाणिज्य कला कौशल स्थापन करके देशमें मनुष्य मात्र की उन्नति करनेमें यथा शक्ति प्रयत्न करना समाज का मूल अभीष्ट है ॥ ७ ॥

सबसे प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्त्तना चाहिये।

व्याख्या—मनुष्य मात्रसे ईर्षा और द्वेष छोड़ कर धर्म्म पालन में समान अधिकारी समझकर जो जितने मान और सत्कार के योग्य हो उतना ही उसके संग वर्त्तना। ८।

अविद्या का नाश और विद्याकी वृद्धि करनी चाहिये।

व्याख्या—यह नियम अपना तात्पर्य आप ही प्रकाश कर रहा है ॥ ९ ॥

प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से न सन्तुष्ट रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

व्याख्या—इस नियम का तात्पर्य यह है कि स्वार्थ वश होकर पराये के ऐश्वर्य आदि श्रेष्ठ गुणोंकी वृद्धि में हानिकार हो येन केन प्रकार अपनाही अर्थसिद्ध मः करना किन्तु प्रत्येक

मनुष्यके सुख विभवादि सुख को अपने सुख और ऐश्वर्य के समान जानना ॥ १० ॥

सब मनुष्योंको सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने मे परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र हैं।

व्याख्या—इस नियम का तात्पर्य यह हैं कि स्वजाति तथा स्वदेश और साधारण की उन्नति के अर्थ जो २ कर्त्तव्य कर्म्म और नियम हैं उनके पूरा करने और पालने में सब कोई मनुष्य पराधीन अर्थात् समाज के आधीन अर्थात् समाज के अधीन होकर वर्त्तें परन्तु स्वात्म संबधी कार्यों और निज व्यवहार पूर्तों के अर्थ सब स्वतंन्त्र रहै।

संक्षेप से यह आर्य्य समाज के दशों नियमोंका ठीक २ अभिप्राय देशानुरागी सत्य देश हितैषी पुरुषों के विचारार्थ प्रकाश किया गया आशा है धर्मात्मा लोग इनको दीर्घ दृष्टि के आश्रय से मनन करेंगे और अघोर दुर्दशा को प्राप्त हुई भारत जननी का पुनरुद्धार और सुधार करना जो विना इस प्रकार की व्यवस्था स्थिर किये सिद्ध होना दुर्घट है अपना परम कर्त्तव्य स्वीकार करेंगे ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रन्तन्न आसुव०।

कलिकाता बड़बाजार ५२ राजार कट्रा
आर्य्यावर्त्त प्रेसे मूद्रित।

शुद्ध अशुद्ध पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
///	१९	मे	के
।ɔ	१९	इस्को	इसका
।///	४	को	का
॥ɔ	८	बिचारना	विचारने
॥/	११	में	है
॥//	१५	दो	दोष
॥।ɔ	१	तथानुकूल	तदनुकूल
॥।ɔ	५	वेरव	भैरव
॥।ɔ	१०	याने	जाने
१	१४	पर्व्वती	पर्व्वतीय
१	१५	हुये	०
१	२	कियी	की
४	२०	प्रस्ताव	प्रलाप
६	११	have	we have
६	२२	सिद्धन्ती	सिद्धान्त
७	२२	मुक्त	युक्त
८	११	यथा तथा	यथातथ्य
८	१७	को	के
९	१३	शब्द	शब्दों
९	२५	किसको	कि जिसको
१०	२५	छान्दोग्यमें	छान्दोग्यमें से
११	६	सम्र	सर्व्व

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	१८	ब्रह्म	०
१२	५	अनश्नन्नन्यन्यो	नश्न नन्नन्यो
१४	२	यं	यः
१५	४	ह्यर्थेभ्यश्च	अर्थेभ्यश्च
१५	५	मनसः	महतः
१५	१२	तिनूनं	पिनूनं
१२	१२	वेत्य	वेत्थ
१७	१३	होता जो	होताहै तो
१८	८	जानने को	जनाने को
१८	१२	फिर ऐसे	फिर आप ऐसे
१८	१४	करही	करनेही से
१८	१७	प्रतीति	प्रीति
२०	११	सदाही से	सदा इसे
२०	२१	अनेको	अनेक
२०	२३	कि	कि जो
२०	२५	महात्माके	महात्माओंके
२१	२०	रूपको	रूप जगतको
२२	२४	प्रक्षक्त	प्रसक्त
२३	२५	को रहेंगे	को स्थान देते रहेंगे
२५	२५	प्रीत	प्राप्ति
२६	१२	प्रति	प्राप्ति
२८	८	परिभ्रंसान्नै	परिभ्रंशान्नै
२८	१८	महाकानयुक्त	महाभ्रान्त
२८	२३	उनको मिथ्या जाने	उनको क्यों मिथ्या जानें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०	८	स्वार्थपरता	स्वार्थ परता उत्पन्न हो गये
३१	१९	योग्य में	योग्य है
३२	७	शरीर कर	शरीरवत्
३२	७	प्रकार निरवयव	प्रकार उक्त पृथिव्यादि पदार्थ निरवयव
३४	२१	अर्थ	अर्थ को
३५	२०	नित्यवती	नित्यबनी
३७	२१	माशान	मीशानं
४३	१०	कुलको	नीच कुलको
४३	११	नीचे	नीच
४५	१८	रावण	रावणके
४६	२४	और व्यापक	और साकाररूप युक्त वर्णन हो रहा है नहीं तो प्रतीत हुवा कि व्याप्य व्यापक
४७	१७	दास्त	स्तदा
४८	४	पृ० १३	पृ० २३
४८	२२	बल वह है कहते	बल यह है बल वह है कहते
५१	१८	विरामान	विरामजान
५६	१८	प्रकाश	प्रकाशक
५९	११	उपकार चाहे	उपकार करे चाहे
५९	१२	कथन से	इस कथन से
६०	१४	अनात्मिक	भ्रमयुक्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७३	२३	पदार्थ अलभ्य	पदार्थ है जो लभ्य
७४	१८	लोकातिगो	शोकातिगो
७७	१६	ह्यादिचैव	ह्यानिचैव
८०	१	बहुत अगस्त	बहुत लोग अगस्त
८०	६	भक्ष और आचार अना-	भक्ष क्या समझे
”	”	चार	क्योंकि आचारानाचरा तथा भक्षाभक्ष
८०	१८	करेव	बकरे
८०	२१	नहीं मिल जावेंगे	नहींबहुत मिल जावेंगे
८१	४	हमारे संग	हमारेही संग
८२	८	जावे और	जावे कि
८४	५	है यदि	है भोगताही है यदि
८५	२०	यह कि	यह है कि
८६	१३	देशको	देशके
८७	५	कन्याग्रहण	कन्या पाणिग्रहण
८७	७	आयुलेने	आयु होने
९०	१६	शुद्धि वह	शुद्धि और वह
९१	३	शारीरक	शारीरक स्वास्थ
९१	४	निरआलस्यका	और निरालस्याकता
९५	१६	सृष्टिकर्त्ता है	सृष्ठिकर्त्ता है उसही की उपासना करनी चाहिये
९८	१६	में और	में असत्य और
१०१	६	अर्चंत	अर्चंत प्राचंत
१०२	६	शस्या	शस्ता
१०३	२	विश्वासः	विप्रासः

और भी अनेक तुच्छ अशुद्धियों छपने में होगई पाठकगण क्षमा करें।